‘TRISHOOL’ AUR SAMPRADAYIKTA KA SAWAL

A dissertation submitted during 2014 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a **M.phill.Degree** in Department of Hindi, School of Humanities.

By

DEEPAK KUMAR DAS
13HHHL11

2014

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
Central University (P.O.)
Prof. C. R. Rao Road
Gachibowli
Hyderabad - 500046
Telngana
INDIA

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the dissertation entitled **'TRISHOOL' AUR SAMPRADAYIKTA KA SAWAL** (**'त्रिशूल' और साम्प्रदायिकता का सवाल**) submitted by **DEEPAK KUMAR DAS** bearing Reg. No. 13HHHL11 in partial fulfillment of the requirements for the award of Master of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

As far as I know the dissertation has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

D E C L A R A T I O N

I, **DEEPAK KUMAR DAS**, hereby declare that this dissertation entitled **'TRISHOOL' AUR SAMPRADAYIKTA KA SAWAL ('त्रिशूल' और साम्प्रदायिकता का सवाल)** submitted by me under the guidance and supervision of **Dr. GAJENDRA KUMAR PATHAK** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Name :**DEEPAK KUMAR DAS**

(Signature of the Student)
Regd. No. 13HHHL11

Date :

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना **1-17**

प्रथम अध्याय: साम्प्रदायिकता की समस्या और हिंदी उपन्यास **18-43**

1.1 साम्प्रदायिकता की अवधारणा

1.2 साम्प्रदायिकता का स्वरूप

1.3 साम्प्रदायिकता की अवधारणा संबंधी विद्वानों के विचार

1.4 हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या

द्वितीय अध्याय: 'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता का स्वरूप और समस्या **44-71**

2.1 त्रिशूल में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक मनोभाव

2.2 त्रिशूल में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता का स्वरूप

2.3 त्रिशूल में साम्प्रदायिकता की समस्या

2.4 साम्प्रदायिकता और जातिवाद का अंतःसंबंध और 'त्रिशूल'

तृतीय अध्याय : 'त्रिशूल' की भाषा और शिल्प **72-97**

उपसंहार **98-100**

संदर्भ ग्रंथ-सूची **101-103**

परिशिष्ट **103-107**

भूमिका

भारत में प्रारंभ से ही विभिन्न धर्म, भाषा और संस्कृति के लोग एक साथ रहते आ रहे हैं। इनका एक साथ रहना इनकी आपसी एकता को दर्शाता है। भारत की एकता और अखंडता के समक्ष आज साम्प्रदायिकता एक बड़ी चुनौती के रूप में खड़ी जान पड़ती है। भारत में साम्प्रदायिकता की चुनौती एक गहरी खाई के रूप में और भी अधिक गहराती जा रही है। शायद इससे पहले इतिहास में इसे इतने बड़े पैमाने पर कहीं नहीं देखा गया। अगर इतिहास पर गौर करें तो मानव को जाति, धर्म, सम्प्रदाय और संस्कृति के आधार पर बांटने वाली शक्तियाँ पहले से ही हमारे समाज में विद्यमान हैं। ये शक्तियाँ मनुष्य को विभिन्न आधार पर बांट कर सदैव अपना स्वार्थ साधती आ रही हैं और यही विभाजनकारी शक्तियाँ आज भी समाज में अलग-अलग रूप में विद्यमान हैं। यही ताकतें समय पर अपना स्वार्थ तो पूरा कर लेती हैं पर इससे उपजे परिणाम को भुगतने के लिए मनुष्य को सदियों तक मजबूर करती रहती हैं। ज्यादा पीछे न जाकर आज़ादी के आस पास के समय को देखें तो हम पाते हैं कि विभाजनकारी शक्तियों ने तब तो अपने स्वार्थ हित के लिए भारत को दो भागों में बांट कर अलग-अलग कर दिया था। लेकिन उस बंटवारे का भुगतान भारतवासी आज तक कर रहे हैं।

'साम्प्रदायिकता' की समस्या आज एक वैश्विक समस्या के रूप में उभर रही है। भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या पिछले तीन दशकों में अपने चरम पर दिखाई देती है। जिसके परिणाम स्वरूप सन् 1984 का सिख दंगा, सन् 1992 का बाबरी मस्जिद विध्वंस, सन् 2002 का गुजरात का गोधरा दंगा और हाल ही में हुए असम के दंगों के देखा जा सकता है। साम्प्रदायिकता की समस्या हमारे देश में एक राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक समस्या के रूप में अपना पैर जमाते आ रही है। यह एक ऐसी समस्या है जो किसी भी राष्ट्र और समाज की एकता और उसकी उन्नति में सदैव बाधक ही सिद्ध होती है। भारत के सन्दर्भ में यह हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के बीच के आपसी मनमुटाव और मतभेदों की ही देन है। सत्ता की राजनीति ने इन्हें कमजोर कर अलग-अलग किया

है । इसी कारण यह आपसी दूरी आज और भी बढ़ती ही जा रही है । भारत में हिन्दुओं में मुसलमानों के प्रति और मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति कुछ पूर्वाग्रह आरम्भ से रहे हैं। इन्हीं का फायदा उठाकर दोनों सम्प्रदायों के बीच की दूरी को बढ़ाया जाता रहा है । इसी दूरी से उपजे साम्प्रदायिकता की समस्या समय के साथ और भी जटिल स्वरूप धारण करती जा रही है । साम्प्रदायिकता की समस्या को कम करने के लिए और साम्प्रदायिक सौहार्द्र बनाने के लिए जहाँ महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु और अबुल कलाम आज़ाद जैसे राजनेता प्रत्यक्ष रूप से काम करते रहे। उसी प्रकार साहित्यकारों ने भी अपने-अपने साहित्य में इस समस्या के विरुद्ध आवाज उठायी है। शुरू-शुरू में जहाँ प्रेमचंद के साहित्य में हमें यह देखने को मिलता है वही आगे चलकर यशपाल, भीष्म साहनी, विभूतिनारायण राय, शानी, राही मासूम रजा, मंजूर एहतेशाम, शिवमूर्ति, कमलेश्वर, भगवानदास आदि जैसे साहित्यकारों के साहित्य में यह मुखर रूप से अभिव्यक्त हुआ है। साहित्य की लीक से हट कर देखें तो इस विषय पर साहित्य की दुनिया के जाने माने लोगों के अलावा कई विद्वानों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इनमें राम पुनियानी, असगर अली इंजीनियर, प्रो. बिपिन चन्द्र, शरद शर्मा, एजाज अहमद, जावेद आलम, सुधीर चंद्रा, इरफ़ान हबीब, जोया हसन्, प्रभात पट्टनायक रोमिला थापर आदि कई नाम देखे जा सकते हैं। इस प्रकार कई राजनेताओं, साहित्यकारों, लेखकों और विद्वानों ने इस समस्या की व्यापकता को पहचानने और इसका निराकरण करने की दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस समय भी वे इस दिशा में प्रयासरत हैं।

यह समस्या भारतीय समाज में एक लाइलाज बीमारी की तरह फैलती ही जा रही है । इसके अंतर्गत हिन्दू और मुस्लिम समुदाय अपने-अपने आपसी मतभेदों और साम्प्रदायिक मनमुटाव के कारण आपसी दूरी बढ़ाते जा रहे हैं । इसका वीभत्स रूप समाज में दंगों और अन्यान्य कांड के रूप में हमारे सामने आता रहा है। इसको दृष्टि में रखकर हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समाधान के लिए इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है । उसकी एक कोशिश

शिवमूर्ति जी द्वारा रचित उपन्यास 'त्रिशूल' में हुई है। यह उपन्यास मुख्यतः रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद पर केन्द्रित है जिसमें इस समस्या के उठने का कारण स्पष्टतः तत्कालीन सत्ता की राजनीति में देखा जा सकता है। मंडल कमीशन के लागू होते ही रामजन्मभूमि को इसका मुख्य एजेंडा बनाकर दिशा परिवर्तन कर दिया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन दंगों को देखा जा सकता है। मुख्यतः इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुए मैंने इस विषय को अपने शोध का विषय बनाया है।

अध्ययन की अनुकूलता की दृष्टि से मैंने प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध " 'त्रिशूल' और साम्प्रदायिकता का सवाल" को तीन अध्यायों में विभाजित किया है। सर्वप्रथम भूमिका के अंतर्गत मैंने इस विषय पर कार्य करने की प्रासंगिकता, अभी तक किये गए इसकी सैद्धांतिकी का एक सर्वेक्षण, प्रयुक्त शोध प्रविधि और शिवमूर्ति के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेख किया है।

प्रथम अध्याय 'साम्प्रदायिकता की समस्या और हिंदी उपन्यास' में साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी अवधारणा पर चर्चा करने के साथ साथ विद्वानों के साम्प्रदायिकता संबंधी महत्त्वपूर्ण विचारों को रखा गया है। आगे इसी में प्रेमचंद से लेकर अब तक के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में चित्रित साम्प्रदायिकता की समस्या को संक्षिप्त रूप में दिखाने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'त्रिशूल उपन्यास में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता का स्वरूप और समस्या' में उपन्यास में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप को दिखाने का प्रयास किया गया है। इसमें झूठी अफवाहों, जनसंचार माध्यम, तत्कालीन सरकार की राजनीति आदि साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में किस प्रकार की भूमिका निभाते है, इसे दिखाया गया है। साथ ही साम्प्रदायिकता से जुड़े एक और पहलू जातिवाद पर भी उपन्यास के सन्दर्भ में चर्चा की गई है।

तृतीय अध्याय 'त्रिशूल की भाषा और शिल्प' में उपन्यास की भाषा शैली और शिल्प विधान पर विचार किया गया है। साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में भाषा अपनी भूमिका किस प्रकार निभाती है इसे दिखाया गया है। अफवाहों की भाषा, जनसंचार माध्यम की भाषा, नारेबाजियों की भाषा, मुहावरों की भाषा, लोकगीतों की भाषा आदि साम्प्रदायिकता को बढ़ाने वाले कारकों के रूप में किस प्रकार काम करते हैं, इस पर प्रकाश डाला गया है।

परिशिष्ट के अंतर्गत शिवमूर्ति से लिए गए साक्षात्कार को उद्धृत किया गया है।

किसी भी शोध कार्य के आरंभ में यह प्रकाशित कर देना अनिवार्य होता है कि प्रस्तुत शोध कार्य में किस प्रकार की शोध प्रविधि का प्रयोग किया जा रहा है। इस दृष्टि से इस शोध कार्य में समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि, विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि और ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

आलोचनात्मक शोध प्रविधि का मूल आधार ही यही है कि शोध के लिए निर्धारित साहित्यिक कृति के साहित्यिक मूल्यों, सैद्धांतिक मान्यताओं, वास्तविक आयामों एवं युग चेतना के सन्दर्भ में विवेचन विश्लेषण हुआ हो। इस दृष्टि से प्रस्तुत कार्य में 'त्रिशूल' की साहित्यिक मूल्यों और उसकी युग चेतना का विश्लेषण करने के साथ साथ साम्प्रदायिकता की सैद्धांतिकी का विवेचन विश्लेषण किया गया है।

कालखंडपरक या ऐतिहासिक शोध प्रविधि के अंतर्गत किसी युग विशेष या कालखंड विशेष का अथवा ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। 'त्रिशूल' की रचना नब्बे के दशक के राजनीतिक, सामाजिक पृष्ठभूमि पर हुई है। इसी कारण उपन्यास की जाँच पड़ताल करने के लिए उस समय की जाँच करनी पड़ी जिसके लिए ऐतिहासिक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

समाज संदर्भित शोध कार्य जिस कृति के अंतर्गत किया जाता है उसके लिए समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत शोध के विषय " 'त्रिशूल' और साम्प्रदायिकता का सवाल" में त्रिशूल का विवेचन विश्लेषण तत्कालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इसके अन्तर्गत तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, भाषाई स्वरूप आदि का विश्लेषण किया गया है। इस दृष्टि से इसमें समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

इस शोध कार्य को करने के दौरान मैंने कई लोगों की मदद ली है। मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करना करता हूँ। सर्वप्रथम मैं श्रद्धेय गुरु तथा निर्देशक डॉ. गजेन्द्र कुमार पाठक जी को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए पथ प्रदर्शित किया। उन्होंने जिस सहनशीलता और एकाग्रता से मेरा पथ प्रदर्शित किया उसके प्रति मैं उनका आभारी हूँ। विभागाध्यक्ष और विभाग के सभी प्राध्यापकों के मूल्यवान सुझावों के लिए भी मैं उनका आभारी हूँ।

मैं अपने मित्रों और सहपाठियों के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में पूरी सहायता की है। अंत में मैं अपने माता और पिताजी को धन्यवाद देता हूँ जिनकी प्रेरणा और आशीर्वाद से मेरा यह शोध कार्य संभव हो सका है।

दीपक कुमार दास

शिवमूर्ति का व्यक्तित्व और कृतित्व:-

समकालीन हिंदी कथा साहित्य जगत में कथाकार शिवमूर्ति जी का एक विशेष स्थान है। जीवन के बदलते यथार्थ को अपनी गहन अनुभूति के साथ समझने वाले शिवमूर्ति का जन्म 11 मार्च, सन् 1950 को उत्तरप्रदेश का जिला सुल्तानपुर में स्थित कुरंग गाँव में हुआ। कुरंग गाँव के एक किसान परिवार से इनका नाता होने के कारण ये गाँव और गाँव की जमीन से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं । अल्पआयु में ही पिता के गृह त्यागी हो जाने के कारण शिवमूर्ति जी को विकट आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था। इसके चलते घर की पूरी जिम्मेदारी इन पर आ गई थी । इस संकट काल में इन्हें कई विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। घर की आजीविका चलाते रहने के लिए इन्होंने दर्जी से सिलाई सीखी, बीड़ी बनाना सीखा, कैलंडर बेचा, बकरियां पाली, ट्यूशन पढ़ाया, मजमा लगाने और जड़ी बूटियाँ बेचने जैसे काम करने पड़े थे। इस प्रकार जीवन संघर्ष करते हुए इन्होंने खुद को गढ़ा। ऐसी विकट स्थिति में इन्होंने जैसे तैसे अपनी बी.ए की पढ़ाई पूरी की और भांति-भांति के कार्य करने के बाद ट्यूशन और अध्यापन का कार्य करते रहे।

आगे चल कर कुछ समय तक अध्यापन और रेलवे की नौकरी करने के बाद उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग से चयनित होकर सन् 1977 में इनकी नियुक्ति बिक्री कर अधिकारी पद पर हुई। अपने कर्तव्यों को पूरी जिम्मेदारी से निभाते हुए उन्हें मार्च सन् 2010 में एडिशनल कमिश्नर के पद से अवकाश प्राप्त हुआ। अपने प्रभावी लेखन के द्वारा शिवमूर्ति जी ने बहुत ही कम समय में हिंदी कथा साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है। इस रूप में हम इनके कहानी संग्रह 'केसर कस्तूरी' और उपन्यासों में 'त्रिशूल', 'तर्पण', और 'आख़िरी छलांग' को देख सकते हैं।

प्रकाशित रचनाएँ:-

उत्तर प्रदेश के कुरंग गाँव में जन्म ग्रहण करने वाले शिवमूर्ति जन्मजात किस्सागो हैं। इन्होंने अपनी पहली कहानी 13 साल की उम्र में लिखी थी। गाँव जवार के उनके बाल सखा बताते हैं कि किसी घटना को शिवमूर्ति इस अंदाज में सुनाते थे कि सब कुछ जैसे सामने आ खड़ा हुआ है। शिवमूर्ति के कहानी संग्रह 'केसर कस्तूरी' में कुल छः कहानियाँ हैं जिनमें 'कसाईबाड़ा', 'भरतनाट्यम', 'सिरी उपमा जोग', तिरिया चारित्तर', 'केसर कस्तूरी', और 'अकाल दंड' को विशेष रूप से देखा जा सकता है। ये छः कहानियाँ 'केसर कस्तूरी' कहानी संग्रह के रूप में छपने से पहले कुछ-कुछ वर्षों के अंतराल में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थीं। शिवमूर्ति के द्वारा लिखी गई कहानियों के अंतराल पर अगर गौर करें तो 'कसाईबाड़ा' (1980), 'भरतनाट्यम' (1981), 'सिरी उपमा जोग' (1984), 'तिरिया चरित्तर' (1987), 'केसर कस्तूरी' (1991) और 'अकाल दंड' (1992) कुछ पत्रिकाओं में अलग-अलग छपी थीं। यों तो शिवमूर्ति की कहानी लेखन की यात्रा 1968 में ही आरम्भ हो चुकी थी। जिनमें इन कहानियों को देखा जा सकता है- 'मुझे जीना है' (1968), 'पान फूल' (1969), 'उड़ी जाओ पंछी' (1970)। यह अलग बात है कि स्वयं शिवमूर्ति के पहले कहानी संग्रह में इनका उल्लेख नहीं हुआ है। 'केसर कस्तूरी' कहानी संग्रह में संग्रहित कहानियों के अलावा इनकी और दो लम्बी कहानियाँ 'बनाना रिपब्लिक' और 'ख्वाज़ा ओ मेरे पीर' 'तद्भव' पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं। जिन्हें पाठकों द्वारा काफी सराहना भी मिली।

उपन्यास के सन्दर्भ में अगर देखें तो शिवमूर्ति जी का पहला उपन्यास 'त्रिशूल' सर्वप्रथम हंस पत्रिका के अगस्त-सितम्बर (1993) के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद यह आगे चल कर पुस्तक के रूप में (1995) में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इनका दूसरा उपन्यास 'तर्पण' (2004) नाम से प्रकाशित हुआ। फिर इनका तीसरा उपन्यास 'आख़िरी छलांग' 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका के सन् 2008 वाले एक अंक में प्रकाशित हुआ था।

सम्मान:-

शिवमूर्ति जी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों के द्वारा हिंदी कथा साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य और समाज के प्रति इनकी प्रतिबद्धता के कारण इन्हें कई पुरस्कारों और सम्मानों से नवाज़ा गया। कहानी 'तिरिया चरित्तर' पर इन्हें हंस पत्रिका द्वारा सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार (1988) मिला। फिर आगे चल कर इन्हें 'कथाक्रम' सम्मान (2002) से, 'अवध भारती' सम्मान (2010) से, 'सृजन' सम्मान (2011) से और 'लमही' सम्मान (2012) से सम्मानित किया गया है।

विशेष:-

शिवमूर्ति जी की कहानियाँ जीवन की सामान्य स्थितियों में निहित संश्लिष्ट नाटकीयता को इस तरह परत दर परत उकेरती चलती हैं कि पाठक मात्र पाठक नहीं रह जाता है। वह उनके कथा लोक का सहचर बन जाता है। उनके पात्र सजीव, मूर्तिमान होकर मुहांमुहीं करने लगते हैं। शिवमूर्ति की इसी विशिष्टता के कारण समूचे हिंदुस्तान के रंगकर्मियों को उनकी कहानियों ने आकर्षित किया। इनकी कहानियों की इसी विशिष्टता के कारण 'तिरिया चरित्तर', 'कसाईबाड़ा' और 'भरतनाट्यम' तथा अन्य कहानियों को नाटक रूप में देश भर में अनेक बार प्रस्तुत किया जा चुका है। रंगमंच और सिनेमा के लोगों को भी उनकी कहानियों ने काफी आकर्षित किया। सिर्फ 'कसाईबाड़ा' कहानी के देश भर में पांच हजार से भी ज्यादा मंचन हो चुके हैं, साथ ही लखनऊ दूरदर्शन ने इस पर एक फीचर फिल्म का भी निर्माण किया है। इनकी कहानी 'तिरिया चरित्तर' पर बासु चटर्जी ने १९९४ और 'कसाईबाड़ा' कहानी पर सुशील सिंह ने फिल्म भी बनाई है। इसके साथ ही आगे 'भारतनाट्यम' कहानी पर दिल्ली दूरदर्शन केंद्र द्वारा एक टेली फिल्म भी बनाई गई।

उपन्यासों के सन्दर्भ में अगर देखें तो 'त्रिशूल' उपन्यास पर फिल्म बनाने की कोशिश कई बार की गई। लेकिन यह कार्य फिल्म की पटकथा लेखन से आगे नहीं बढ़ पाया। 'तर्पण' उपन्यास पर अभी फिल्म निर्माणाधीन है जो जल्द ही देखने को मिलेगी। शिवमूर्ति जी की एक और विशेषता इसमें है कि इनके कथा साहित्य की प्रभावत्मकता हिंदी जगत को लांघ कर अन्य भाषाओं के साहित्य संसार तक पहुँच जाती है। अर्थात् इनकी कहानियों का नाटकों में रूपांतरण और हजारों मंचन के अलावा अनेक भाषाओं में इनकी रचनाओं का अनुवाद भी हुआ है। इनकी कहानियों का पंजाबी, उर्दू, ओडिया, कन्नड़ आदि में अनुवाद हो चुका है तथा उपन्यास 'त्रिशूल' उर्दू व पंजाबी में, 'तर्पण' कन्नड़ तथा जर्मन में अनुदित हो चुका है। अनुवाद के जरिए शिवमूर्ति हिंदी भाषा की परिधि से बाहर निकलकर अन्य भाषाओं के संसार में भी अपनी पहचान बना चुके हैं। इनकी रचनाओं की विशेषता से इनकी प्रसिद्धि का अंदाजा लगाया जा सकता है कि इनकी रचनाओं का फ़लक कितना बड़ा है।

रचना संसार:-

शिवमूर्ति के कथा संसार पर गौर करें तो यह थोड़ा सीमित जान पड़ता है। लेकिन उनकी रचना का कलेवर बड़े फ़लक पर विद्यमान है। शिवमूर्ति जी ने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन की विषमताओं और अंतर्विरोधों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है। कई विद्वानों ने उनको प्रेमचंद और फणीश्वरनाथ 'रेणु' की परम्परा का कथाकार माना है। हिंदी प्रदेशों को जानने के लिए जिस प्रकार प्रेमचंद को पढ़े जाने की बात कही जाती है, वही बात इन पर भी लागू होती है। कारण ठीक उसी प्रकार शिवमूर्ति जी के कथा साहित्य में भी उत्तर प्रदेश का अच्छा खासा परिचय हमें मिल जाता है। इन्होंने अपने कथा साहित्य में स्त्री समस्या, किसान समस्या, भ्रष्ट राजनीति, साम्प्रदायिकता, जातिवाद जैसी समस्याओं को उठाया है। 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर', 'अकालदंड', 'केसर कस्तूरी', 'भरतनाट्यम', सिरी उपमा जोग', 'बनाना रिपब्लिक' और ख्वाज़ा ओ मेरे पीर' आदि कहानियों के सन्दर्भ में इसे भलीभांति समझा जा सकता है।

'केसर कस्तूरी' कहानी संग्रह की पहली कहानी 'कसाईबाड़ा' भारतीय राजनीति के विद्रूप चेहरे को उजागर करती है। यह गणतांत्रिक पद्धति के प्रथम सोपान गाँव और ग्राम पंचायत के पद ग्राम प्रधान को लेकर मचे भ्रष्ट राजनीति की कहानी है। यह स्त्री चरित्र प्रधान कहानी है जिसकी प्रमुख पात्र शनिचरी है। कहानी में ग्राम प्रधान द्वारा आदर्श विवाह के नाम पर ब्याही गई लड़कियों को जिस्मफरोशी के धंधे में किस प्रकार झोंक दिया जाता है इसकी व्यथा कथा की अभिव्यक्ति 'कसाईबाड़ा' करती है। कहानी में हो रहे कुकर्मों का शिकार अन्ततः शनिचरी भी हो जाती है। गाँव, समाज में इस प्रकार के कुकृत्यों का संचालन सत्ता में बैठे ऊपरी लोग करते हैं और इनका शिकार गरीब असहाय लोग होते हैं। कहानी में आये एक प्रसंग से पूरी स्थिति का पता चल जाता है जब सगुनी नामक एक पात्र बताती है कि "काकी, अपना परधान कसाई है। इसने पैसा लेकर हम सबको बेच दिया है। शादी की बात धोखा थी। हम सबको पेशा करना पड़ता है, रूपमती को भी अमीरों के घर सोने भेजा जाता है।"[1] इस प्रकार कहानीकार एक बड़े सवाल को भी उठाते हैं कि जब सत्ता के विभिन्न पदों पर ऐसे लोगों का दबदबा है तब सामान्य जनता मदद के लिए किसे पुकारे, किसके पास जाए ? इस पूरी कहानी से यह तो साफ हो जाता है कि किस प्रकार समाजसेवा के नाम पर लोग केवल अपना स्वार्थ और हित साधने में लगे हुए हैं। किस प्रकार हर जगह फायदे की राजनीति खेली जा रही है।

इसी क्रम में आगे शिवमूर्ति जी की एक अन्य कहानी 'तिरिया चरित्तर' को देखा जा सकता है। शिवमूर्ति की यह कहानी भी स्त्री चरित्र प्रधान कहानी है। इसकी केन्द्रीय पात्र विमली है। विमली का चरित्र चित्रण कहानीकार ने एक जीवट सम्पन्न निर्भीक महिला के रूप में किया है। विमली की विशिष्टता इसमें है कि वह पुरुष प्रधान समाज में भी पुरुषों के समान ही परिवार की जिम्मेदारी उठाती है और ईंट के भट्टे पर काम करती है। कहानी में आगे विवाह के बाद पति का रोजगार के कारण शहर जाने पर विमली अपने ससुर के साथ रहती है। उसका ससुर विसराम जो

[1] शिवमूर्ति, केसर कस्तूरी, पृष्ठ संख्या-9

विमली के यौन शोषण करने का बार-बार प्रयास करता है और आखिरकार नशे की दवा धोखे से खिलाकर विमली का बलात्कार करता है। जब विमली न्याय के लिए पंचायत के सामने गुहार लगाती है तब विसराम उल्टा विमली को ही चरित्रहीन साबित कर देता है। साथ ही विमली के सर पर 'तिरिया चरित्तर' का कलंक मढ़ दिया जाता है। पंचायत राज दलितों और स्त्रियों के लिए किस प्रकार अभिशाप बन जाता है इसे कहानी के इस अंश में इस प्रकार देख सकतें हैं, "काफी देर तक 'विचार' होता है। अंत में बोधन महतो खड़े होकर फैसला सुनाते हैं- गाँव की नाक कटाने वाली, गाँव की इज्ज़त में दाग लगाने वाली जनाना को बेदाग नहीं छोड़ा जा सकता है। अगर आगे थाना पुलिस तक बात जाती है तो भी गाँव के लोग उसे चंदा करके झेलेगें। लेकिन दागी जनाना को 'दाग' करके ही नैहर भेजा जायेगा।" चारो तरफ सन्नाटा ! कुत्ते तक चुप हैं।"[1]

इस प्रकार शिवमूर्ति जी इस कहानी के माध्यम से स्त्री और पुरुष के चरित्रों का मूल्यांकन समान धरातल पर करने की अपील करते हैं। साथ ही पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था की आंतरिक बुनावट में परिवर्तन लाने की बात पर जोर देते हैं।

'तिरिया चरित्तर' में जहाँ विमली हजार कोशिशों के बाद भी अपनी इज्ज़त की रक्षा नहीं कर पाती है और पंचायत द्वारा सुनाये फैसले के खिलाफ एक नाकाम आवाज उठाती है। इसकी मुखर अभिव्यक्ति आगे शिवमूर्ति जी की कहानी 'अकालदंड' में हुई है। 'अकालदंड' की सुरजी किस प्रकार अपनी इज्ज़त बचाने के लिए लड़ती है, इसे वह दर्शाता है। यह कहानी उसके आत्मसम्मान बचाने की कहानी है। यह कहानी गाँव में अकाल के फैले होने के माहौल की पृष्ठभूमि पर रची गई है। कहानी में चारों तरफ अकाल ही अकाल फैला हुआ है। इस अकाल की स्थिति में जो भी सरकारी सहायता उपलब्ध करायी गई उसका लाभ केवल गाँव के दबंग किस्म के लोग उठाते हैं और बचा हुआ गरीबों के हिस्से जाता है। आगे कहानीकार ने इस कहानी में

[1] शिवमूर्ति, तर्पण, पृष्ठ संख्या-141-142

बिजली, पानी और सड़क की समस्या की तरफ भी ध्यान आकर्षित किया है। इसे कहानी के इस अंश से समझा जा सकता है- "नीचे दूर दराज के गाँवों को जाती बैलगाड़ी की टेड़ी मेढ़ी लीक और ऊपर हाईटेंसन् विद्युत धारा परिवहन करते तारों की समान्तर रेखाएँ। लम्बे-लम्बे डैने फैलाये पंक्तिबद्ध खड़े विशालकाय खम्बे। शक्ति के अतिरेक से अनवरत झंकारते-फुफकारते। यही विद्युत धारा दूर-दराज के शहरों को रोशनी से जगमगा रही होगी। करोड़ों गैलन पानी से मीलों लम्बे पार्कों और विहारों को तर करते रंगीन फव्वारे छूट रहे होंगे लेकिन यहाँ गाँव के लिए इस शक्ति का कोई अर्थ नहीं है।"[1]

इस पूरे प्रकरण से शिवमूर्ति जी ने भारतीय किसानों और ग्रामीण समाज की उस बिडम्बना को दिखाया है, जहाँ एक तरफ विकास कार्य अबाध गति से हो रहा है वहीं दूसरा हिस्सा अंधेरे में और भी पिछड़ता जा रहा है। साथ ही कहानीकार ने किसानों की समस्याओं की जाँच पड़ताल भी की है। उन कारणों का भी पता लगाने की कोशिश की है जिन कारणों से किसान दिन-प्रतिदिन आत्महत्या करते जा रहे हैं। किस प्रकार किसान वर्ग धीरे-धीरे मजदूर वर्ग में तब्दील होता जा रहा है इस पर भी उन्होंने गहराई में विचार किया है।

'केसर कस्तूरी' कहानी में शिवमूर्ति जी ने बाल विवाह का शिकार होती स्त्रियों की कथा कही है। इस कहानी में उन्होंने केसर के माध्यम से अल्पआयु में विवाह हो जाने पर एक स्त्री को कैसी-कैसी दुर्गतियाँ झेलनी पड़ती है, इसका वर्णन किया है। अल्पआयु में विवाह हो जाने पर किस प्रकार वह अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाती और खेलने कूदने की उम्र में उसे घर की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। इसका मार्मिक चित्रण केसर के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

बेरोजगारी की समस्या से उपजे पारिवारिक संबंधों में अलगाव की स्थिति का बेजोड़ चित्रण हमें शिवमूर्ति जी के 'भरतनाट्यम' कहानी में देखने को मिलता है। इसमें कहानीकार ने सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि आज की बदलते

[1] शिवमूर्ति, केसर कस्तूरी, पृष्ठ संख्या-34

सामाजिक व्यवस्था में सिर्फ वही व्यक्ति सफल हो सकता है जिसमें चाटुकारिता की प्रवृत्ति हो। जो संवेदनशील और सिद्धांतवादी होगा उसे केवल ठोकर ही मिलेगी। इस बात को कहानी के नायक के सन्दर्भ में भलीभांति समझा जा सकता है।

'सिरी उपमा जोग' में कहानीकार ने भारतीय ग्रामीण महिला की आत्मसमर्पण और त्याग की भावना को दिखाया है। कहानी में दिखाया गया है कि किस प्रकार एक स्त्री अपने पति की पढ़ाई के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देती है। आगे कहानी में दिखाया गया है कि एक व्यक्ति नौकरी करने के बाद अपने गाँव और पत्नी से दूर हो जाता है। दूसरी शादी कर अपना जीवन बसर करने लगता है तथा पहली पत्नी और बच्चे को याद तक नहीं करना चाहता है जिसके परिणाम स्वरूप उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। कहानीकार ने इस कहानी के माध्यम से निम्नवर्गीय ग्रामीण समाज को प्रस्तुत किया है। यहाँ ऐसी बिडम्बना है कि जो जहाँ से आता है उसी समाज को भूल जाता है। जिस गाँव में पला बढ़ा होता है, नौकरी लगने के बाद वही गाँव उसे काटने लगता है। इस प्रकार यह कहानीकार द्वारा रचित पारिवारिक संबंधों के बीच के दुराव और अलगाव की कहानियों में से एक बेजोड़ कहानी है।

शिवमूर्ति जी ने अपनी कहानी 'ख्वाज़ा ओ मेरे पीर!' में सदियों से चली आ रही उस रूढ़िवादी और मानसिक जकड़न का चित्रण किया है, जहाँ एक पुत्र प्राप्ति के लिए इंसान कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार रहता है। यह कहानी 'मामा और मामी' दो पात्रों के माध्यम से कही गई है। कहानी में शादी के बाद भी नियमित रूप से अलग रह रही मामी किस प्रकार केवल एक पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य को मन में रखकर रोज रात को खेत के मचान पर मामा से यौन सम्बन्ध बनाने के लिए आती है। इस पूरी घटना को बड़े दुःख के साथ मामी अपने भांजे को बताती है। इसका चित्रण इस कहानी में हुआ है। कहानी में जब मामी अपने भांजे से कहती है कि मामा मुझसे प्रेम नहीं करते, नहीं तो जिस रास्ते रात को मैं उनके पास जाती हूँ वही रास्ता मेरे पास भी वापस आता है। कहानी में आए कई ऐसे प्रसंग है जहाँ कहानीकार अश्लीलता से दूर पाठकों को एक

रूमानियत के पायदान पर ले जाकर खड़ा कर देता है। यहाँ शिवमूर्ति स्त्री पुरुष संबंधों की एक नई मीमांसा करते नज़र आते हैं।

'बनाना रिपब्लिक' कहानी में शिवमूर्ति जी ने ग्रामीण राजनीति से रूबरू कराया है कि किस प्रकार गाँव में जाति के नाम पर राजनीति खेली जाती है। इस कहानी का पात्र दलित होने के कारण किस प्रकार राजनीति की चक्की में पिसता हुआ चला जाता है और अंत में उसके हाथ में कुछ नहीं बचता है। इसका सफल चित्रण इस कहानी में हुआ है। कहानी के अंतर्गत नायक पैसे के लालच में एक सवर्ण की बात में आकर अपना चुनाव में नामांकन करवा देता है और यह सोचता है कि वह सवर्ण उसकी मदद करेगा। लेकिन अंत में वह अपनी ज़मीन तक गिरवी रखने पर भी चुनाव हार जाता है। इस कहानी के माध्यम से शिवमूर्ति जी ने भ्रष्ट राजनीति के उस नग्न यथार्थ को चित्रित किया है जहाँ पर कोई केवल इसीलिए राजनीति में आना चाहता है कि वह इससे बहुत सारा धन कमा सकेगा।

अन्ततः शिवमूर्ति जी की सारी कहानियों पर दृष्टिपात करें तो अधिकांशतः कहानियाँ नायिका प्रधान हैं। 'तिरिया चरित्तर', 'सिरी उपमा जोग', 'कसाईबाड़ा', 'अकालदंड' आदि कहानियों में स्त्री की वेदना, उनका संघर्ष, अपमान, प्रताड़ना, कामवासना, पारस्परिक रिश्तों की जकड़न सभी कुछ गहरी वेदना के साथ अभिव्यक्त होता है। इनकी कहानियाँ आधुनिक जीवन बोध के व्यापक फ़लक को अपने अन्दर समेटे हुए हैं। उनकी कहानियाँ ग्रामीण अंचल के यथार्थ चित्र को हमारे सामने यथावत प्रस्तुत कर देती हैं।

उपन्यासों के सन्दर्भ में अगर देखें तो शिवमूर्ति जी ने अभी तक कुल तीन उपन्यास लिखे हैं। पहला सन् 1995 में 'त्रिशूल', दूसरा सन् 2004 में 'तर्पण' और तीसरा सन् 2008 में 'आख़िरी छलांग' है। जिसमें से 'आख़िरी छलांग' अभी तक पुस्तक रूप में नहीं आया है। 'त्रिशूल' (1995) उपन्यास साम्प्रदायिकता और जातिवाद की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया है। सन् 1990 के बदलते राजनीतिक परिदृश्य को आधार बनाकर इस उपन्यास की कथा

रची गई है। मंडल कमीशन आयोग के लागू होते ही समाज का दो फांकों में बंट जाना और इसके बाद रामजन्मभूमि का मुद्दा बनना उपन्यास की पृष्ठभूमि है। उपन्यास के प्रमुख पात्रों में महमूद, नैरेटर, शास्त्रीजी और पाले को देखा जा सकता है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र महमूद है जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने आज़ाद भारत में अल्पसंख्यकों पर हो रहे अन्याय अत्याचार को दिखाया है। उपन्यास के दूसरे भाग में पाले है जो गाँव में फैले जातिवाद और रामजन्मभूमि के नाम पर पैर फैलाने वाले साम्प्रदायिकता के खिलाफ आवाज उठाता है। साम्प्रदायिक माहौल में साम्प्रदायिक भावना फैलाने वालों में एक चेहरा शास्त्री जी के रूप में दिखाया गया है। इन जैसे लोगों के ही कारण साम्प्रदायिक माहौल में अल्पसंख्यकों का जीना किस प्रकार दूभर हो जाता है इसका पता हमें उपन्यास में आए इस प्रसंग से चलता है। जब महमूद के साथ सरे बाज़ार ऐसा व्यवहार होता है -

"एक उसके बाल पकड़ हिलाता है.....

"बोल साले, जै सिरी राम"...

"बोलता है कि यही त्रिशूल तेरी....."

"पैंट खोल साले की।"

"बोल राम हमारे बाप हैं।"

"अल्ला अकबर पाप हैं।"[1]

महमूद के साथ इस प्रकार का व्यवहार होने का केवल यही कारण था कि वह मुसलमान था। अयोध्या के मंदिर निर्माण आंदोलन में अस्मिता के प्रश्न से ज्यादा एक साम्प्रदायिक जिद भरी थी। जिसे 'त्रिशूल' के सन्दर्भ में भलीभांति समझा जा सकता है। 'त्रिशूल' उपन्यास की अंतिम

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल,पृष्ठ संख्या-38

परिणति हमें महमूद को तमाम कष्टों के बाद भी वहाँ से भगा दिया जाना और पाले की हत्या करवा देने में देखने को मिलता है। इस प्रकार उपन्यासकार ने 'त्रिशूल' के माध्यम से हिन्दू समाज के विद्रूप साम्प्रदायिक चेहरे का पर्दाफाश किया है।

शिवमूर्ति जी का 'तर्पण' उपन्यास सन् 2004 में प्रकाशित हुआ था। इसे दलित विमर्श का महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जा सकता है। 'तर्पण' हिन्दू समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था की सड़ी-गली मान्यताओं को एक-एक कर प्रस्तुत करता है। उपन्यास में आए प्रमुख पात्रों में राजपतिया, पियारे, धरमु पंडित, चंदर और भाई जी आदि हैं। दलित समाज द्वारा सवर्णों के शोषण का विरोध इसमें देखने को मिलता है। कथानक में जब सवर्ण चंदर दलित पात्र राजपतिया का बलात्कार करने की कोशिश करता है, तब उसके विरोध में पूरे दलित समाज का एकजुट होना दलितों में आ रहे परिवर्तन को दिखाता है। सवर्णों द्वारा अपनाए गए अभी तक के दाव पेंच स्वयं दलित वर्ग उसी तरह अपनाकर सवर्णों का का उत्तर देता है। 'तर्पण' के दलित पात्र अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए हैं। उन्हें संविधान से मिले सुरक्षा अधिकारों का पूरा ज्ञान है। इस जागरूकता और विद्रोह के स्वर का एक परिचय उपन्यास में आए इस अंश से पता चल जाता है- "वह वर्ग संघर्ष था रोटी के लिए। यह वर्ण संघर्ष है इज्ज़त के लिए। इज्ज़त की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरूरी है। इसीलिए इस लड़ाई के लिए सरकार ने हमें अलग से कानून दिया है। हरिजन एक्ट। हम इस कानून से इस नाग को नाथेंगे।"[1]

इस प्रकार उपन्यास में चित्रित दलित समाज को अब यह समझ में आ गया है कि दलित की मुक्ति संघर्ष करने में ही है। 'तर्पण' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें चित्रित दलितों में हीन भावना नहीं है। इसमें दलितों द्वरा सवर्णों के खिलाफ किया संघर्ष दलितों के आत्मसम्मान का प्रतीक है जिसे वे हर हाल में प्राप्त कर लेना चाहते हैं।

[1] शिवमूर्ति, तर्पण, पृष्ठ संख्या-26

शिवमूर्ति जी द्वारा अभी तक लिखे गए उपन्यासों में आखिरी उपन्यास 'आख़िरी छलांग' है। जो सन् 2008 में 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। शिवमूर्ति ने इस उपन्यास में भारतीय किसानों की ज्वलंत समस्या को केंद्र में रखा है। उपन्यास की पृष्ठभूमि अवध ग्रामांचल पर आधारित है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र पहलवान है। उपन्यासकार ने पहलवान को केंद्र में रखकर एक किसान की सभी समस्याओं से अवगत कराया है।

उपन्यास का कथानक इस प्रकार है कि पहलवान एक किसान है जिसका बेटा इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है और साथ ही बेटी की शादी की जिम्मेदारी भी उसके सर है। सिर्फ खेती से यह सब चला पाना कितना मुश्किल है इसका चित्रण इसमें हुआ है। उपन्यास के अंतर्गत पांडे बाबा का चरित्र भी पाठकों को आकर्षित करता है जो बैंक वालों के प्रलोभन में पड़ कर 'लोन' लेकर ट्रैक्टर खरीद लेता है। ट्रैक्टर का पलट जाना और किश्त न दे सकने के कारण खेत का निलाम हो जाना यह सब किसानी जीवन की बिडम्बना को अभिव्यक्त करता है। अंत में किसान जीवन की सबसे बड़ी समस्या वर्तमान सन्दर्भ में देश की समस्या से वहाँ जुड़ जाती है जब पांडे बाबा इस समस्या को न झेल पाने के कारण खुदकुशी कर लेते हैं। बारीकी से देखे तो 'आख़िरी छलांग' की केन्द्रीय समस्या किसानों की आत्महत्या नहीं है बल्कि किसानों को आत्महत्या की ओर ले जाने वाली व्यवस्था है। उपन्यासकार ने 'आख़िरी छलांग' में किसानों की वर्तमान दशा 'ऐसी क्यों है' इसकी जांच पड़ताल करने का एक प्रयास किया है।

शिवमूर्ति का कथा संसार सीमित होने पर भी वे जिन मुद्दों को अपनी कहानियों और उपन्यासों में उठाते हैं उसका कैनवास बहुत बड़ा है। इनकी प्रसिद्धि का एक कारण यह भी है कि ये अपनी कहानियाँ यथार्थ के धरातल से उठाते हैं। जो आँखों के सामने घट रहा हो पर दिखाई न दे रहा हो या अनजान हो उससे अवगत करवाते हैं। इस प्रकार ये अपने छोटे से रचना संसार के माध्यम से आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना पाने में सफल रहे हैं।

प्रथम अध्याय

साम्प्रदायिकता की समस्या और हिंदी उपन्यास :-

1.1 साम्प्रदायिकता की अवधारणा:-

भारत में अलग-अलग धर्म और सम्प्रदाय के लोग रहते हैं। यह विविधता में एकता भारत के सामर्थ्य और सीमा दोनों को उद्घाटित करती है। आज भारत और उसमें बसने वाले भारतीयों के लिए साम्प्रदायिकता एक विकट और गंभीर समस्या है। भारत की एकता के बीच आज सबसे बड़ी खाई साम्प्रदायिकता बन कर उभर रही है। भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या पर विचार करने से पूर्व 'साम्प्रदायिकता' क्या है ? यह जान लेना समीचीन होगा। साम्प्रदायिकता 'सम्प्रदाय' शब्द का विशेषण है तथा सम्प्रदाय का प्रचलित अर्थ एक मत विशेष को मानने वाले समुदाय से आकर रूढ़ हो गया है।

किसी सम्प्रदाय व मत विशेष के अनुयायी या उसके सिद्धांतों का पालन करने वाले लोग साम्प्रदायिक कहलाते हैं । अपने सम्प्रदाय के प्रति साम्प्रदायिकों की भावना को 'साम्प्रदायिकता' कहते हैं। साम्प्रदायिकता किसी सम्प्रदाय से संबंधित होने का भाव, सम्प्रदाय के प्रति कट्टरता का भाव, दूसरे सम्प्रदाय के अहित पर अपने सम्प्रदाय की हित रक्षा का भाव है। सम्प्रदाय का अंग्रेजी पर्याय 'communal' है जो 'समुदाय' का पर्यायवाची है और 'साम्प्रदायिकता' का अंग्रेजी अर्थ 'communilism' है। यह शब्द फ्रांसीसी भाषा के 'कम्यून' शब्द से विकसित हुआ है।

सामान्यतः किन्हीं दो सम्प्रदायों या समुदायों के बीच के झगड़ों या फसादों को साम्प्रदायिकता की संज्ञा दे दी जाती है। आशय यह है कि 'साम्प्रदायिकता' एक अवधारणा है जो समुदाय के संघर्ष एवं टकराव के कुछ अन्तर्निहित मूल्यों के कारण सिद्धांत रूप में आती है। यह

एक वैश्विक समस्या है लेकिन आधुनिक भारत के इतिहास में साम्प्रदायिक समस्या का अर्थ है विभाजन से पूर्व और उसके बाद के हिन्दू समुदाय का मुस्लिम समुदाय के साथ सम्बन्धों का विश्लेषण। इतिहासकार असगर अली इंजीनियर के शब्दों में अगर देखें तो उनका मानना है कि 'साम्प्रदायिकता आधुनिक काल की परिघटना है।'[1] पर ऐसा नहीं है कि मध्यकाल में साम्प्रदायिकता की समस्या नहीं थी। यह समस्या उस समय भी थी पर उसका स्वरूप अलग था।

साम्प्रदायिक तनाव मध्ययुगीन काल में भी देखने को मिलता है पर साम्प्रदायिक राजनीति का उदय उपनिवेशवाद के दौरान हुआ। जब भी साम्प्रदायिकता का सवाल उठता है तो अनिवार्य रूप से राजनीति के लिए धर्म का हिंसक इस्तेमाल का मामला उभर कर सामने आता है। अर्थात् जहाँ से राजनीति का धर्म समाप्त होकर धर्म की राजनीति आरम्भ हो जाती है वहीं से साम्प्रदायिकता अपना पैर जमाना आरम्भ कर देती है। साम्प्रदायिकता दो या दो से अधिक समुदायों के टकराव एवं संघर्ष पर फलती-फूलती है। इस प्रक्रिया में वह हिंसक हो उठती है। दरअसल धर्म का आवरण लेकर अपनायी गई यह आक्रामकता ही 'साम्प्रदायिकता' है। यही आक्रामकता हमें दंगों, झगड़ों और फसादों के रूप में देखने को मिलती है जो कहीं आर्थिक कारणों से तो कहीं सामाजिक कारणों से या तो कहीं धार्मिक कारणों से अपनायी जाती है।

1.2.साम्प्रदायिकता का स्वरूप:-

भारत अनेक धर्मों और सम्प्रदायों का देश है। इस देश की प्रमुख समस्याओं में से साम्प्रदायिकता एक प्रमुख ही नहीं बल्कि भयावह समस्या के रूप में दिखाई देती है। इस दृष्टि से अगर साम्प्रदायिकता के स्वरूप को हम व्यापक स्तर पर देखें तो यह हमें दो रूपों में देखने को मिलती है। पहला 'उग्र साम्प्रदायिकता' और दूसरा है 'सुप्त साम्प्रदायिकता'। 'साम्प्रदायिकता' के स्वरूप पर चर्चा करने के क्रम में यशवंत विष्ट ने लिखा है कि "सुप्त साम्प्रदायिकता में विविध

[1]असगर अली इंजीनियर, भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, पृष्ठ संख्या-45

सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिकता की भावना चलती रहती है लेकिन प्रखर नहीं होती है।.....परन्तु उग्र साम्प्रदायिकता समाज के लिए घातक सिद्ध होती है। इसमें साम्प्रदायिकता अपनी पराकाष्ठा पर होती है। दंगे, कलह, युद्ध आदि उग्र साम्प्रदायिकता के परिणाम स्वरूप ही होते हैं।"[1]

भारत में विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। अपने-अपने धर्म को लेकर भारत के किसी भी धर्म विशेष समुदाय में असुरक्षा बोध या धर्म-रक्षा का बोध रहता है। ऐसी स्थिति में अपने-अपने धर्म, सम्प्रदाय के हित में सामने पड़ने वाले धर्म विशेष और समुदाय को मिटाने की भावना से जिस तरह या जिस प्रकार के झगड़े या फसाद होते हैं वह उग्र साम्प्रदायिकता के अंतर्गत आते हैं। यह सुप्त साम्प्रदायिकता के बजाय ज्यादा घातक होता है। ऐसा नहीं है कि भारत में किन्हीं दो धर्म विशेष सम्प्रदायों के बीच का स्वरूप हमेशा से ऐसा ही था या अब है। भारत में उग्र साम्प्रदायिकता के अंतर्गत हिन्दू और मुस्लिम तथा सुप्त साम्प्रदायिकता के अंतर्गत हिन्दू-ईसाई या ईसाई-मुस्लिम के बीच की साम्प्रदायिकता को देख सकते हैं। पहले भी कई धर्म विशेष समुदाय भारत में बसते थे और आज भी यहाँ रहते हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों से साम्प्रदायिकता की आग ने ऐसा जोर पकड़ा है कि इसका चेहरा विश्वयुद्ध से और भी ज्यादा भयावह जान पड़ता है। आंकड़े बताते हैं कि विश्वयुद्ध में भी उतने लोग नहीं मरे थे जितना कि इस शताब्दी के साम्प्रदायिक दंगों में मृत्यु दर का आंकड़ा दर्ज किया गया है।

भारत में अभी तक जितने भी साम्प्रदायिक दंगे हुए हैं उनमें भले तात्कालिक कारण चाहे दूसरे ही क्यों न तलाश कर लिए जाए परंतु उन दंगों की पृष्ठभूमि पहले ही तैयार कर दी जाती है। साम्प्रदायिकता केवल मारकाट या आपसी मतभेदों तक सीमित न रहकर यह एक विचारधारा बन चुकी है। प्रो. बिपिन चंद्र ने इसे एक सिद्धांत कहा है। उनके अनुसार यह "एक ऐसे विश्वास

[1] यशवंत विष्ट, साम्प्रदायिकता:एक चुनौती और चेतना, पृ.सं-58

तंत्र या एक-दूसरे पर टिकी हुई धारणाओं का ऐसा जाल है जिसके चश्में से समाज और समाज नीति को देखा और परखा जाता है।"[1]

इतिहासकार प्रो. बिपिन चंद्र का मानना है कि भारतीय समाज कई ऐसे सम्प्रदायों में बंटा हुआ है जिनके हित न सिर्फ अलग है बल्कि एक-दूसरे के विरोधी भी हैं। यह सब अपने-अपने धर्म के नाम पर अपना अलग-अलग आचरण करते हैं और परस्पर विरोधी बनते चले जाते हैं जिसे बढ़ावा देने का काम कुछ अवसरवादी लोग अपने हित साधने के लिए करते हैं।

साम्प्रदायिकता मुख्यतः दो स्तरों पर देखी जाती है। व्यापक स्तर पर होने वाली साम्प्रदायिकता ज्यादा खतरनाक होती है। जैसे भारत हो या पाकिस्तान दोनों ही जगहों पर साम्प्रदायिक दंगे होने पर सबसे ज्यादा जान और माल का नुकसान होता है कारण पाकिस्तान में हिंदू अल्पसंख्यक और भारत में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं। ऐसे में स्थिति ज्यादा नाजुक होती है जिसे काफी गंभीरता से लिया जाता है।

जब किसी धर्म विशेष बहुल जगह पर साम्प्रदायिक दंगा हो जाए और वहाँ के अल्पसंख्यक इसके शिकार हो जाएँ तब यही अल्पसंख्यक जिस जगह संख्या में ज्यादा होते हैं वहाँ इस क्रिया की प्रतिक्रिया दुगनी तेजी से होती है। जिस प्रकार एक लोहा जल्दी गरम नहीं होता है और गरम हो जाए तो जल्दी ठंडा नहीं होता है। ठीक उसी प्रकार साम्प्रदायिकता का यह स्वरूप एक दिन की बनावट नहीं है। चूँकि इसका धर्म से जुड़े होने पर ज्यादा गम्भीरता से लिया जाता है इसी कारण इसे हराने के लिए राजनीतिक और विचारधारा दोनों स्तरों पर लड़ना होगा। इससे निजात पाने के लिए संतुलन और संयम दोनों की आवश्यकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में संविधान के लागू होते ही संवैधानिक रूप से भारत को एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में घोषित कर दिया गया। यहाँ धर्म निरपेक्ष का अर्थ धार्मिक या धर्म विरोधी नहीं है बल्कि सभी धर्मों के प्रति समान सम्मानपूर्ण व्यवहार से है। धर्मनिरपेक्षता लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रेरित होती है। इसके

[1] बिपिन चंद्र, साम्प्रदायिकता एक प्रवेशिका, पृष्ठ संख्या-06

अंतर्गत अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक होना कोई मायने नहीं रखता बल्कि सभी के साथ समानता का व्यवहार महत्त्वपूर्ण होता है।

सन् 1947 में भारत को ब्रिटिश उपनिवेश से आज़ादी मिली जिसके फलस्वरूप भारत दो राष्ट्रों में विभाजित हुआ और साथ ही एक बहुत बड़ी त्रासदी का जन्म हुआ। मुस्लिम लीग के 'दो राष्ट्र सिद्धांत' के फलस्वरूप सिर्फ देश दो भागों में नहीं बंटा बल्कि पूरे उत्तर भारत को साम्प्रदायिकता की भट्टी में झोंक दिया गया जिसके कारण दोनों राष्ट्रों से विस्थापित लोगों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ा। उस समय सत्ताधारियों ने अपनी स्वार्थ लोलुपता के कारण धर्म के नाम पर हो रहे दंगों को दबाने की कोशिश नहीं की बल्कि उसे और बढ़ावा दिया। धर्म के नाम पर जिस आग को हवा दी जा रही थी दरअसल वह समस्या धार्मिक नहीं बल्कि राजनीतिक वर्चस्व के परिणाम सवरूप पैदा हुई जान पड़ती है। जैसे कि हम मुख्य रूप से देख सकते हैं कि यह साम्प्रदायिकता की समस्या भारत की आज़ादी के आस पास ही शुरू होती है। यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि साम्प्रदायिकता की समस्या अगर धार्मिक है तो इसका नेतृत्व धार्मिक नेता ही करते हैं। ऐसा नहीं है कि इससे पहले यह समस्या नहीं थी। स्वतंत्रतापूर्व भी भारत को साम्प्रदायिकता की समस्या का सामना करना पड़ रहा था।

हालाँकि धर्म साम्प्रदायिकता का कारण नहीं है और साम्प्रदायिकता को भी धर्म में कोई खास दिलचस्पी या उससे लेना-देना नहीं है। मगर यह भी सच है कि धार्मिक मतभेदों को साम्प्रदायिक लोग अपनी राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं और धर्म से राजनीतिक हित साधते हैं। इसके अलावा धर्म से इसका कोई रिश्ता नहीं है। 'साम्प्रदायिकता' नामक एक शब्द ने समाज को कई स्तरों में बांट कर रख दिया है। असगर अली इंजीनियर के शब्दों में आज स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि-

"हम भारतीय कम और एक स्तर पर अधिक हिंदू, मुस्लिम, ईसाई या सिक्ख हैं और दूसरे स्तर पर ब्राह्मण, राजपूत या अन्य पिछड़ा वर्ग या दलित और तीसरे स्तर पर महाराष्ट्रियन,

कन्नड़ या तमिल हैं। इन संकीर्ण पहचानों के आधार पर हम सत्ता के लिए लड़ते हैं।"[1] ऐसी स्थिति में सबसे ज्यादा प्रभावित अल्पसंख्यक होते हैं और आगे उनमें खुद के खिलाफ भेदभाव होने का अहसास जगता है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत ऊपर से चाहे जितना भी एकत्रित दिखता हो वह अन्दर से उतना ही खोखला है। इसकी जिम्मेदार भी वही साम्प्रदायिक ताकतें हैं जो भारत को धर्म, जाति और भाषा आदि के नाम पर अन्दर से खोखली करती जा रही हैं।

भारत में साम्प्रदायिकता को हम कुछ चरणों में देख सकते हैं। एक तो भारत के स्वतंत्रता संग्राम और भारत विभाजन के समय के साम्प्रदायिक दंगों के रूप में और दूसरा शताब्दी के अंतिम दो दशकों में साम्प्रदायिक दंगों के स्वरुप में। इसकी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। कुछ विद्वान इसे मध्यकालीन भारत से जोड़ते हैं और कुछ इसे और भी पुरानी अर्थात् प्राचीन भारत से मानते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इसकी ऐतिहासिक, मध्यकालीन और आधुनिक पृष्ठभूमि है, जिसे टुकड़ों में बांट कर समझा नहीं जा सकता है।

अगर कालक्रमानुसार इस देश में साम्प्रदायिकता की खोज की जाए तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह समस्या लगभग हर काल में व्याप्त रही है लेकिन हमें यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि इसका स्वरुप वर्तमान समय से भिन्न रूप में रहा है। अगर प्राचीन भारत पर विचार करें तो कुछ विद्वान इसे बौद्ध धर्म के उदय काल के दौरान ब्राह्मणों और बौद्धों के बीच साम्प्रदायिक झगड़ों से इसका आरम्भ मानते हैं। प्रेम कुमार मणि साम्प्रदायिकता का उदय ब्राह्मणों और बौद्धों के युद्ध के साथ जोड़ते हुए लिखते हैं कि "वास्तविकता यह है कि साम्प्रदायिकता का सवाल हमारे यहाँ उस समय से है जब बौद्ध और ब्राह्मण एक दूसरे के खिलाफ लड़ रहे थे। यही वह भारत भूमि है, जहाँ पुष्यमित्र शुंग ने हर बौद्ध मस्तक के लिए राजकोष की सौ मुद्राएँ निर्धारित की थीं। विपक्षी मतावलंबियों के खिलाफ राजकीय हिंसा की यह पहली मिसाल है। पुष्यमित्र

[1] बहुवचन, अंक-32,2012, पृष्ठ संख्या-19

शुंग के इतिहास से हम सब वाकिफ हैं। वह पहला ब्राह्मणवादी था, जिसने राजकाज पर सीधे कब्ज़ा किया था। जिस शंकराचार्य की महानता के इतने गुण गाए जाते हैं, वह भी पुष्यमित्र शुंग की ही कड़ी में था। खारवेल राजाओं को उत्साहित कर शंकराचार्य ने भी बौद्धों का क़त्ल करवाया था। बौद्धों और ब्राह्मणों का संघर्ष आज के हिन्दू- मुसलमान की साम्प्रदायिकता से कम हिंसक नहीं था।"[1]

इसी संबंध में कमलेश्वर का मानना है कि "भेदभाव वाले भारतीय समाज में आदिम काल से ही साम्प्रदायिकता पैठ बनाए हुए है। जाति प्रथा के साथ ही समाज का विखंडन शुरू हो गया था।"[2]

अर्थात् इसकी जड़ें तब की हैं जब प्राचीन भारत जातियों, वर्गों, वर्णों, धर्मों, क्षेत्रों में बंटा हुआ था। चूँकि भारत में जाति व्यवस्था थी और बौद्ध धर्म सर्वप्रथम जाति व्यवस्था को तोड़ रही थी जिसके फलस्वरूप भारतीय जाति व्यवस्था के अंतर्गत निम्न जाति के लोग आर्थिक रूप से मजबूत होने लगे जिसमें सामन्ती वर्ग की आर्थिक स्थिति कमजोर होने लगी। इन सबके प्रतिक्रिया स्वरूप ब्राह्मणवाद और सामन्तवाद ने बौद्ध धर्म का विरोध किया। इसके परिणाम स्वरूप एक प्रकार से अधिक हिंसक साम्प्रदायिक रूप हमें बौद्धकालीन प्राचीन भारत में देखने को मिलता है। इसके बाद अगले चरण में "ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष के बाद शैवों और वैष्णवों के साम्प्रदायिक संघर्ष हुए। इसकी एक लम्बी परम्परा है।"[3]

कुछ विद्वान इसे मोहम्मद बिन कासिम के भारत आक्रमण के समय हिन्दू-मुस्लिम के लड़ाई-झगड़े से जोड़ते हैं लेकिन यह वास्तव में एक भ्रामक धारणा है। अगर हम बाबरी मस्जिद विध्वंस के आधार पर मध्यकाल पर विचार करें तो हिन्दुओं का कहना है कि यहाँ पहले से ही राममंदिर था। बाबर ने इसे तुड़वाकर यहाँ मस्जिद का निर्माण करवाया था। इस मान्यता को गलत

---

[1]. हंस, अप्रैल,2003, राजेन्द्र यादव, (साम्प्रदायिकता पर कुछ सवाल-प्रेम कुमार मणि), पृष्ठ संख्या-64

[2]. हंस, जनवरी-2003, राजेंद्र यादव, (चिंता के केंद्र में साम्प्रदायिकता-सुनील), पृष्ठ संख्या-83

[3]. वही, पृष्ठ संख्या-83

साबित करते हुए 'कथाक्रम-2002' के दो दिवसीय समारोह में 'साम्प्रदायिकता की चुनौतियां और कथा साहित्य के सरोकार' विषय पर मुख्य अतिथि कमलेश्वर ने बीज वक्तव्य देते हुए जो कहा उसे सुनील ने इस प्रकार उद्धृत किया है-

"संवत सोरह सौ असी, असी गंगा के तीर,

स्रावन शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर" को आधार बनाकर उन्होंने सिद्ध किया कि रामचरितमानस का रचना काल सन् 1643 के आस पास था। बाबर 1526 में भारत आया था। प्रचार किया जा रह है कि 1530 में बाबर के निर्देश पर मीर बाकी ने राम मंदिर तुड़वाकर बाबरी मस्जिद बनवाई। तोड़-फोड़, मार-पीट, दंगा–फसाद, आतंक, नरसंहार, युद्ध, छलकपट, घात, प्रतिघात का वर्णन करने में माहिर तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' या 'विनयपत्रिका' में इतनी बड़ी घटना का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। तुलसीदास और अब्दुर्रहीम खानखाना के बीच पत्राचार में भी मंदिर विध्वंस और मस्जिद निर्माण का जिक्र नहीं आता। यह आश्चर्य नहीं विचार का विषय है। गवारों, शूद्रों, पशुओं, नारियों से इतना प्रेम करने वाले अनन्य रामभक्त तुलसीदास ने राममंदिर तोड़ने वाले मुगलों को क्यों बख्श दिया ? कमलेश्वर ने इस प्रश्न का उत्तर भी दिया है- राम मंदिर का पूरा मुद्दा अयोध्या और काशी में तैयार किए जा रहे भ्रामक इतिहास की देन है।"[1]

उपर्युक्त वक्तव्य से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि कम से कम मध्यकाल तक मुस्लिम धर्म का हिन्दू धर्म के प्रति हिंसात्मक रुख उस प्रकार का नहीं था, जिस प्रकार का आज का इतिहास उसे पेश कर रहा है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन और मध्यकालीन साम्प्रदायिक झगड़े किसी धर्म से नफरत के कारण नहीं होते थे अपितु अपने राजनीतिक, आर्थिक स्वार्थों के कारण साम्प्रदायिक हिंसा होती थी। अंततः भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ तो पुरानी है लेकिन प्रत्येक काल में इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न रूपों में था। किसी काल में यह अपने उग्र रूप में दिखाई देती है तो किसी काल में सुप्त रूप में दिखाई देती है

[1]. हंस, जनवरी, 2003,राजेंद्र यादव, 'चिंता के केंद्र में साम्प्रदायिकता'-सुनील,पृष्ठ संख्या- 83

भारत विभाजन से पहले अगर देखें तो हम पाते हैं कि भारत में साम्प्रदायिकता जैसे जहरीले वृक्ष का बीज ब्रिटिश शासकों ने अपने साम्राज्य को और अधिक सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए किया था। अंग्रेजों के आने से भारत के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। औपनिवेशिक संरचना ने सामन्ती संरचना का स्थान ले लिया। इन्होंने ही लोकतांत्रिक शासन, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था आदि आधुनिक अवधारणाओं से परिचय भी करवाया पर भारतीय तब भी उनके गुलाम ही थे। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी व्यक्ति के पैरों में रस्सी बाँध कर उसे खुले मैदान में छोड़ दिया जाए। इस स्थिति में भी वह व्यक्ति गुलाम ही रहेगा। इसी स्थिति से निजात पाने के लिए भारत के हिन्दू और मुस्लिम एक होकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहे थे। इससे पहले उनमें उस तरह की साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। यह अंग्रेजों की ही करामत थी कि आगे चलकर हिन्दू-मुस्लिम को इस प्रकार के भीषण साम्प्रदायिक दंगों का सामना करना पड़ा।

साम्प्रदायिकता के मूल में राजनीति है। भारत की साम्प्रदायिकता की जड़ में भी यही विद्यमान है। 'फूट डालो और राज करो' वाली नीति के तहत ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों में वर्ण, जाति, धर्म, आदि के आधार पर फूट डालना शुरू कर दिया था इसी नीति से उपजी भावना आगे चल कर हमें भीषण साम्प्रदायिक दंगों के रूप में देखने को मिलती है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि भारत में साम्प्रदायिकता एक जटिल परिघटना है और यह अंग्रेजी काल की ही उत्पत्ति है। इस सम्बन्ध में इतिहासकार असगर अली इंजीनियर लिखते हैं कि- "मध्यकाल की विशिष्टता धार्मिकता थी, न कि साम्प्रदायिकता। धर्म साम्प्रदायिकता का मूल कारण नहीं है। यह केवल औजार है। साम्प्रदायिकता के मूल में राजनीति है। चूँकि धर्म में

भावना का पुट होने के कारण लोगों को एकत्रित करने की क्षमता है, इसलिए इसे एक औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है।"[1]

सार रूप में भारत में साम्प्रदायिकता को हम दो चरणों में देख सकते हैं, एक तो भारत के स्वतंत्रता संग्राम और भारत विभाजन के समय का साम्प्रदायिक दंगों के रूप में और दूसरा शताब्दी के अंतिम दो दशकों में देख सकते हैं।

1.3. साम्प्रदायिकता की अवधारणा संबंधी विद्वानों के विचार:-

साम्प्रदायिकता की अवधारणा को स्पष्ट करने के क्रम में अनेक विद्वानों ने इसको अनेक प्रकार से परिभाषित किया है। इस संबंध में यहाँ निम्नलिखित विद्वानों के विचारों को उदृत किया जा रहा है। यथा-

1. प्रो. बिपिन चन्द्र - "साम्प्रदायिकता का आधार ही यह धारणा है कि भारतीय समाज कई ऐसे सम्प्रदायों में बंटा हुआ है जिनके हित न सिर्फ अलग हैं बल्कि एक दूसरे के विरोधी भी हैं। साम्प्रदायिकता के जन्म के पीछे का विश्वास यह है कि राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक इरादों के लिए लोगों को सिर्फ धर्म की रस्सी से ही बाँधकर आँका जा सकता है। दूसरे शब्दों में अलग-अलग समुदायों और समूहों के हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई सिर्फ धार्मिक ही नहीं बल्कि धर्म से परे मामलों में भी एक निश्चित समूह की तरह आचरण करेंगे क्योंकि उनका धर्म एक है धर्म से परे इन मामलों में राजनीति भी है। इसी विश्वास से साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म हुआ और इसी वजह से धर्मधारी समाज के लोगों में धर्म निरपेक्ष हितों को भी अलग-अलग बांट कर देखा जाने लगा।"[2]

---

[1]. असगर अली इंजीनियर, भारत साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, पृष्ठ संख्या-12

[2]. बिपिन चन्द्र, साम्प्रदायिकता एक प्रवेशिका, पृष्ठ संख्या-03

2. श्री प्यारे लाल- "साम्प्रदायिकता एक कुचक्र है। एक बार उसे चला दिया जाए तो वह अपने आप घूमता रहता है और आगे-आगे बढ़ता रहता है। वह विरोधी सम्प्रदायवाद को जन्म देता है और फिर दोनों अधिकाधिक जोर के साथ एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते रहते हैं। साम्प्रदायिकता आखिर क्या है ? यह है समाज के अन्दर युगों-युगों की रूढ़िवादिता, जीर्ण परम्पराओं की रक्षा के लिए उत्सुक निरक्षर और अज्ञान ग्रस्त लोगों की प्रगति की राह रोकने के लिए पूँजीवाद तथा उसके छत्र छाया में पलने वाले प्रतिक्रियावाद द्वारा अपनी लक्ष्य सिद्धि हेतु उपयोग में लाने का फल।"[1]

3. गोपीनाथ कालभोर- साम्प्रदायिकता पर चर्चा करते हुए इस वृत्ति में विध्वंसक एवं दंगाई होने को भी शामिल करते हैं और कहते हैं- "समूहों के हितों के बीच होने वाले टकराव का रूप जब विध्वंसक और दंगाई हो जाए तब वह साम्प्रदायिक कहलाता है।"[2]

4. राम आहूजा - "साम्प्रदायिक हिंसा में दो विभिन्न धर्म से सम्बद्ध लोग सम्मिलित होते हैं जो एक-दूसरे के विरूद्ध गतिवान हो जाते हैं तथा एक दूसरे के प्रति दुश्मनी, भावात्मक क्रोध, शोषण सामाजिक भेदभाव तथा सामाजिक उपेक्षा से पीड़ित होते हैं। एक सम्प्रदाय की दूसरे के प्रति एकता उच्च कोटि के तनावों एवं ध्रुवीकरण के बीच बनी हुई है। आक्रमण के लक्ष्य 'शत्रु' समुदाय के सदस्य होते हैं। सामान्यतः साम्प्रदायिक दंगों के दौरान कोई नेतृत्व नहीं होता जो कि दंगों की स्थिति को रोक सकें या नियंत्रित कर सकें।"[3]

5. रामधारी सिंह 'दिनकर'- "साम्प्रदायिकता संक्रामक रोग है। जब एक जाति भयानक रूप से, साम्प्रदायिक हो उठती है, तब दूसरी जाति भी अपने अस्तित्व का ध्यान करने लगती है और उसके भी भाव शुद्ध नहीं रह पाते। अच्छे से अच्छे हिन्दू को भी यदि वर्षों तक यह समझाया जाय कि मुसलमान तुम से घृणा करते हैं, तो इस जहरीले आघात से वह अविचलित नहीं रह सकता।

---

[1]. यशवंत विष्ट, साम्प्रदायिकता एक चुनौती और चेतना पृष्ठ संख्या-50

[2]. सम्मलेन, सं–विभूति मिश्र भाग,18,पृष्ठ संख्या-40

[3]. सम्मलेन, सं–विभूति मिश्र भाग,18, पृष्ठ संख्या-40

हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता की वृद्धि इसी प्रकार हुई है । और जब हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता दिखाई पड़ी, तब मुसलमानों की साम्प्रदायिकता और भी बढ़ गई एवं दोनों जातियों के बहुत से लोग परस्पर शत्रु हो उठे ।"[1]

6. राजेंद्र यादव- "साम्प्रदायिकता एक ऐसे ध्रुवीकरण की प्रक्रिया है, जो सिर्फ विधर्मियों को छाँटने तक नहीं रूकती, वह अपने भीतर के अधार्मिक और अवांछित तत्वों को भी अलगाने और परिणामतः उन्हें एकजुट होने की मजबूरी पैदा करती है ।"[2]

साम्प्रदायिकता की समस्या भारत में ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में एक लाइलाज बीमारी की तरह फैलती जा रही है । इस दृष्टि से इस विषय पर विद्वानों का विचार करना लाज़िमी है । साहित्य के अलावा साहित्यिक कृति से इतर क्षेत्रों में भी इस विषय पर विचार विमर्श किये जा रहे हैं । साहित्य में जहाँ इस विषय पर साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति हो रही है वहीं स्वतंत्र रूप से भी इस पर कार्य किए जा रहे हैं । उपर्युक्त विद्वानों के साम्प्रदायिकता संबंधी विचारों और परिभाषाओं पर ध्यान दें तो रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसे एक संक्रामक रोग कहा है और साम्प्रदायिकता की आधारभूमि हिन्दू- मुस्लिम सम्प्रदाय के अस्मिता को लेकर हो रहे झगड़े तक सीमित रखा है । इस विचार को आगे बढ़ाते हुए प्रो. बिपिन चन्द्र ने इसे राजनीति, आर्थिक से लेकर समाज और संस्कृति से जोड़ कर देखा है । इसी क्रम में राजेन्द्र यादव इसका सूक्ष्म निरीक्षण कर इसके जटिल प्रक्रिया के कई पर्तों को खोलते हैं । अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी विचारों से राजेंद्र यादव की परिभाषा की तुलना करें तो यह ज्यादा नजदीक जान पड़ती है । उन्होंने साम्प्रदायिकता की प्रकृति को पहचानते हुए यह स्पष्ट किया है कि यह केवल विधर्मियों को छांटने तक नहीं रूकती बल्कि भीतर के अधार्मिक और अवांछित तत्त्वों को भी अलग कर उन्हें एकजुट करने पर मजबूर करती है । अंततः उपर्युक्त इन सारी परिभाषाओं और विद्वानों के विचार को ध्यान

---

[1]. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ संख्या-618

[2]. राजेंद्र यादव, कांटे की बात ६, पृष्ठ संख्या-143

में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि जिस साम्प्रदायिकता को हमेशा धर्म से जोड़ कर देखा जाता है वह सही नहीं है, बल्कि यह तो धर्म की राजनीति तथा परम्परा से चली आ रही रूढ़िगत साम्प्रदायिक मनोभाव की उत्पत्ति है।

1.4. हिंदी उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या:-

उपन्यासों में समसायिकता का आग्रह सबसे अधिक दिखाई पड़ता है। हिंदी उपन्यास भी समसामयिक साम्प्रदायिकता की समस्या से अछूता नहीं है। गौर करें तो इस समस्या का शुरुआत प्रेमचंद के उपन्यासों से ही देखने को मिल जाता है। भारत में जब साम्प्रदायिकता एक बड़ी समस्या के रूप में उभर रही थी तब वह दौर प्रेमचंद की रचनाशीलता का आरम्भिक दौर था। प्रेमचंद जैसे बहुआयामी रचनाकार इस समस्या को बिना उठाये चुप कैसे रह सकते थे ? प्रेमचंद अंग्रेजों की राजनीति के तहत साम्प्रदायिकता फैलानेवाली नीतियों से भी भलीभांति वाकिफ थे जिसे उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में भलीभांति चित्रित किया है। प्रेमचंद बहुत पहले ही इस बात को समझ गए थे कि धर्म की शक्ति, सत्ता की शक्ति और अन्यान्य सभी शक्तियों को अर्थ की शक्ति ही संचालित करती है। धर्म के नाम पर लड़ाने वाले सत्ताधारियों के पीछे काम करने वाली अर्थ की शक्ति से वो बखूबी परिचित थे। इसलिए प्रेमचंद कहते हैं "अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति न कोई अन्य संस्कृति, अब संसार में केवल एक संस्कृति है और वह है आर्थिक संस्कृति। मगर हम आज भी हिन्दू-मुस्लिम का रोना रोये चले जाते हैं।"[1]

प्रेमचंद साम्प्रदायिकता के छद्म से अच्छी तरह वाकिफ थे और यह सजगता उनके लेखन में आरम्भ से ही नजर आती है। प्रेमचंद अपने एक लेख 'साम्प्रदायिकता और संस्कृति' में साम्प्रदायिकता की समस्या पर चिंता करने के साथ-साथ उसका पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं-

[1]. प्रेमचंद,(सं-नंदि्कशोर आचार्य), साम्प्रदायिकता और संस्कृति,पृ सं.140

"हमारी समझ में नहीं आता है कि वह कौन सी संस्कृति है, जिसकी रक्षा के लिए साम्प्रदायिकता इतना जोर बांध रही है ? वास्तव में संस्कृति की पुकार केवल ढोंग है, निरा-पाखंड। और इसके जन्मदाता भी वही लोग हैं, जो साम्प्रदायिकता की शीतल छाया में बैठ कर विहार करते हैं।"[1]

प्रेमचंद के उपन्यासों पर अगर ध्यान दें तो हमें उनके उपन्यासों में साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। साम्प्रदायिकता विरोधी दृष्टिकोण के रूप में प्रेमचंद के उपन्यास 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' और 'सेवासदन' को देख सकते हैं।

प्रेमचंद के 'कायाकल्प' में साम्प्रदायिकता का स्वरूप देखने को मिलता है। धर्मान्धता से साम्प्रदायिकता का बीज कितनी जल्दी बो दिया जाता है, इसका चित्र प्रेमचंद ने 'कायाकल्प' में प्रस्तुत किया है।

उपन्यास में आए यशोदानंद और ख्वाजा महमूद साम्प्रदायिक विद्वेष से भरे दो पात्र हैं जो बचपन में स्कूल से कॉलेज के दिनों तक तो गहरे मित्र रहते हैं पर समय के साथ-साथ कर्मक्षेत्र में आते ही धार्मिक कट्टरता के कारण वे आपस में विरोधी हो जाते हैं। आगे चलकर ये दोनों ऐसे धर्मांध नेता के रूप में सामने आते हैं जो 'गोहत्या' को लेकर एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। उपन्यास में आए मुसलमानों के एक बड़े जलसे में गाय की कुर्बानी करने का निर्णय लिया जाता है। चूँकि यशोदानंद हिन्दू होने के नाते गोरक्षा उनका धर्म बन जाता है और इसी वजह से झगड़े और फसाद शुरू हो जाते हैं और अंत में इसी 'गोहत्या' के कारण चल रहे दंगे में यशोदानंद अपनी जान गँवा देते हैं।

उपन्यास 'कायाकल्प' में साम्प्रदायिक दंगों के मूल में उन धर्मांध धार्मिक नेताओं के उत्तेजक भाषण हैं जो आम जन में साम्प्रदायिकता का विष भर रही हैं। जिसके फलस्वरूप दंगे होते हैं और आखिरकार इससे लेन देन न रखने वाले भी इसकी चपेट में आते चले जाते हैं।

[1]. प्रेमचंद,(सं-नंदि्कशोर आचार्य), साम्प्रदायिकता और संस्कृति,पृष्ठ संख्या-138

उपन्यास में आए अन्य एक प्रसंग में हिन्दू-मुसलमानों के बीच कट्टरता की सीमा यहाँ तक पहुँच जाती है कि "ख्वाजा महमूद साहब ने फतवा दिया है- "जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाए उसे एक हजार हजों का सबाब होगा। यशोदानंद ने काशी के पंडितों की यह व्यवस्था मंगवाई कि एक मुसलमान का वध एक लाख गोदान से श्रेष्ठ है।"[1]

प्रेमचंद ने कायाकल्प में साम्प्रदायिक दंगों के कारण की चर्चा करने के साथ-साथ यथासंभव उसका समाधान करने का प्रयास भी किया है। इसी क्रम में प्रेमचंद के एक अन्य उपन्यास 'सेवासदन' को भी देख सकते हैं जिसमें प्रेमचंद ने साम्प्रदायिक झगड़ों का कारण धार्मिक नहीं बल्कि राजनीतिक बताया है। इसमें हिन्दुओं और मुसलामानों से किसी प्रकार की कोई दुश्मनी न रखते हुए तटस्थ भाव से दोनों की मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। साम्प्रदायिकता केवल धर्म के आधार पर ही न होकर किस प्रकार उसका एक मुख्य आधार राजनीतिक भी होता है उसका परिचय प्रेमचंद ने सेवासदन में दिया है। उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम का विरोधी भाव तेज़अली के इस कथन से पता चलता है, जब वह कहता है "आजकल पोलिटिकल मुद्दा का जोर है, हक़ और इन्साफ का नाम न लीजिये। अगर आप मुदर्रिस हैं तो हिन्दू लड़कों को फेल कीजिये, तहसीलदार हैं तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइए, मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओं को सजाएं दीजिये। सबइंस्पेक्टर पुलिस हैं तो हिन्दुओं पर झूठे मुकद्दमे दायर कीजिये। तहकीकात करने जाईये तो हिन्दुओं के बयान गलत लिखिए, अगर आप चोर हैं तो आप किसी हिन्दू के घर डाका डालिए, अगर आपको हुस्न और इश्क का ख़ब्त है तो किसी हिन्दू नाजनीन को उठाइए, तब आप कौम के सादिव, कौम के मुदासिन, कौम किश्ती के नाखुदा सब कुछ हैं।"[2]

इसी क्रम में आगे प्रेमचंद ने अपने उपन्यास 'कर्मभूमि' में हिन्दू-मुस्लिम के बीच के अलगाव और बढ़ रहे दुराव के कारणों की जाँच पड़ताल की है जिसमें उन्होंने यह दर्शाया है कि

---

[1]. प्रेमचंद, कायाकल्प, पृष्ठ संख्या-5

[2]. प्रेमचंद, सेवासदन, पृष्ठ संख्या–174

इतिहासकार अपने निहित स्वार्थों के कारण इतिहास की व्याख्या अपने सुविधानुसार करता है। जिस कारण आगे चलकर कौमों के बीच साम्प्रदायिक भेदभाव पैदा होता है। इसी के परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। उपन्यास में आए एक पात्र जिला हाकिम गजनवी सलीम से कहता है, "गलत तवारिखें पढ़कर दोनों फिर से एक-दूसरे के दुश्मन हो गए हैं और मुमकिन नहीं कि हिन्दू मौका पाकर मुसलमानों से फौजी अदावतों का बदला न लें, लेकिन इस ख्याल में तसल्ली होती है कि इस बीसवीं सदी में हिन्दुओं जैसी पढ़ी- लिखी जमाअत मजहबी- जगराहबंदी की पनाह नहीं ले सकती। मज़हब का दौर तो ख़त्म हो रहा है, बल्कि यों कहें कि ख़त्म हो गया। सिर्फ हिन्दुस्तान में उसमें कुछ-कुछ जान बाकी है।"[1]

इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने लगभग आधे उपन्यासों में जिसमें साम्प्रदायिकता की समस्या है, उसमें इसका चित्रण करने के साथ-साथ एक प्रकार से इसका समाधान देने की भी कोशिश की है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में साम्प्रदायिक संघर्ष के कारणों पर जोर देते हुए लिखा है कि इसका कारण उतना धार्मिक नहीं है जितना कि इसका कारण राजनीतिक है। व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण धर्म को हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह तब भी हो रहा था और आज के संदर्भ में भी हमें यही देखने को मिलता है। चाहे वह बाबरी रामजन्मभूमि विवाद हो या मुजफ्फरपुर या फिर कानपुर दंगा हो।

प्रेमचंद का साहित्य और आज़ादी के बाद के उपन्यासों के अन्तर्गत अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय के जीवन को आधार बना कर साम्प्रदायिकता की समस्या को उजागर करने वाले कई और उपन्यास लिखे गए। जिसकी अपनी एक लम्बी परम्परा है। यहाँ हम कुछ उपन्यासों को इस प्रकार देख सकते हैं -

[1]. प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृष्ठ संख्या-112

1.देवेंद्रनाथ सत्यार्थी – कठपुतली (1954)

2.यशपाल – झूठा सच (1958)

3.कमलेश्वर –लौटे हुए मुसाफिर (1961)

4.भीष्म साहनी – तमस (1973)

5.विभूतिनारायण राय – शहर में कर्फ्यू (1986)

6.अमृतलाल मदान – सिंधुपुत्र (1991)

7.गौरीशंकर कपूर – उल्का साकेत (1991)

8.नासिरा शर्मा – जिंदा मुहावरे (1993)

9.प्रियवंद – वे वहाँ कैद है (1994)

10.दीपचंद निर्मोही – कितने अंधेरे (1995)

11.प्रताप सहगल – अनहदनाद (1999)

12.चंद्रकिशोर – शीर्षक (1996)

13.गीताजंलि श्री – हमारा शहर उस बरस (1998)

14.द्रोणवीर कोहली – कैम्प (1998)

15.भगवानदास मोरवाल – काला पहाड़ (1999)

16.ज्योतिष जोशी – सोनबरसा (2000)

17.कमलेश्वर – कितने पाकिस्तान (2000)

18.आख़िरी कलाम – दूधनाथ सिंह (2003)

प्रेमचंद के उपन्यासों के बाद साम्प्रदायिकता की समस्या से संबंधित पहला उपन्यास हमें देवेंद्रनाथ सत्यार्थी का उपन्यास 'कठपुतली'(1954) मिलता है। इस उपन्यास में सर्वप्रथम साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित लोगों का सहज, सरल और संवेदनपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है।

देवेंद्रनाथ सत्यार्थी के बाद यशपाल ने इस समस्या को अपने 'झूठा सच' (1958) में अभिव्यक्त किया। यह उपन्यास दो भागों में विभाजित है। पहला 'वतन और देश' और दूसरा 'देश का भविष्य'। यशपाल का 'झूठा सच' स्वयं उनके भोगे हुए यथार्थ की कहानी है। उपन्यास के पहले खण्ड में पंजाब की मिलीजुली हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का वर्णन संवेदनशीलता और सजीवता के साथ हुआ है। यशपाल ने सन् 1942 से सन् 1952 तक के भारत की दशा को अपनी कथा का आधार बनाया है। यशपाल ने इसमें उजड़ते हुए लाहौर और बसते हुए शहर दिल्ली दोनों की यातनाओं को गहरी मानवीय अंतःदृष्टि के साथ विस्तार से आंका है। उपन्यास का प्रथम भाग 'वतन और देश' को लेकर वे 'वतन और देश' में अंतर के साथ उसके विभाजनकर्ता की खोज करते हैं और उसके उत्तर में वे राजनीतिक पार्टियों और उनके हित साधकों को दोषी करार देते हैं। उपन्यास में आए प्रसंग में एक पात्र मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना के बारे में कहता है कि 'लीग के लीडर और जिन्ना मज़हबी मुसलमान नहीं, पोलिटिकल मुसलमान है। उन्हें हुकुमत करने का मौका चाहिए।'[1] इस प्रकार प्रथम भाग में साम्प्रदायिक दंगों के कारण उनके परिणाम, तथा उनका आम जनों पर प्रभाव किस प्रकार पड़ता है, इसका विशद चित्रण है।

इसके दूसरे भाग में यानी कि 'देश का भविष्य' में यशपाल ने आज़ादी के बाद के भारत की परिस्थितियों से रूबरू कराया है। आजादी के बाद की परिस्थितियों को देखते हुए यशपाल ने देश के भविष्य के बारे में गम्भीर चिंता व्यक्त की है। उन्होंने बताया है कि देश में आज़ादी के पहले और उसके बाद भी स्थिति बिल्कुल वैसी ही है। उपन्यास में यशपाल ने एक पात्र गिल साहब के माध्यम से यह विश्वास दिलाने की कोशिश करते हैं कि, जनता निर्जीव नहीं है,

[1]. यशपाल, झुठासच, पृष्ठ संख्या- 154

जनता सदा मूक नहीं रहती । देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के हाथ में है ।इस प्रकार यशपाल ने देश के भविष्य के बारे में अपनी चिंता व्यक्त करने के साथ-साथ इस उपन्यास को समाप्त किया है ।

साम्प्रदायिकता को केंद्र में रखकर लिखा गया अन्य एक उपन्यास 'तमस' है । यह उपन्यास भीष्म साहनी द्वारा सन् 1973 में लिखा गया है, तथा सन् 1975 में उन्हें इस उपन्यास के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है । वैसे तो काल विस्तार की दृष्टि से यह उपन्यास मात्र पांच दिनों की कहानी है लेकिन इसमें भी उपन्यासकार ने साम्प्रदायिकता के हर पहलू पर विचार किया है । 'तमस' में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व का चित्रण है जिसमें पूर्व पंजाब में हिंदू, मुसलमान एक साथ एक मुहल्ले में रहते थे और एक दूसरे के सुख-दुःख में हिस्सेदार थे । उनके सामने केवल एक ही सवाल था हिंदुस्तान की आजादी का । इस उपन्यास का आरम्भ नत्थू नामक पात्र के सूअर मारने से होता है । मुरादअली नामक एक अन्य पात्र ने डॉक्टरी के काम के नाम पर नत्थू को पांच रूपये की पेशगी पर सूअर मारने का काम दिया था । दरअसल यह डॉक्टरी का काम नहीं था बल्कि मरा हुआ सूअर दंगे भड़काने के काम में लाए जाने के लिए था । जिस पूर्वी पंजाब में हिंदू और मुस्लिम एक साथ रहते थे वहीं दंगे की शुरूआत होते ही उनका आपसी प्रेम अचानक खत्म हो जाता है । मुरादअली तो इस खेल का मात्र एक मोहरा था जिसे नियंत्रित ब्रिटिश शासक कर रहा था । उपन्यास में आए एक प्रसंग में रिचर्ड जो शहर का डिप्टी कमिश्नर है, तनाव की स्थिति में उससे उसकी बीबी लीजा पूछती है कि "क्या करेगा ?" तो वह उत्तर देता है कि "मैं शासन करूँगा और क्या करूँगा ?" तब रिचर्ड ही लीजा से कहता है कि "धर्म के नाम पर ये आपस में लड़ते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लड़ते हैं ।" तब लीजा का उत्तर जैसे पूरा सच बयान करती है; वो कहती है "देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम लोग इन्हें आपस में लड़ाते हो, क्यों, ठीक है ना ? ।"[1]

[1]. भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ संख्या-35

इस प्रकार भीष्म साहनी जी ने उन तमाम प्रसंगों को छुआ है जो साम्प्रदायिकता का हाथ मजबूत करती है और साथ ही साथ इन समस्याओं के समाधान खोजने का सायास प्रयास किया है। भीष्म साहनी ने आज़ादी के पहले हुए साम्प्रदायिक दंगों को आधार बनाकर इस समस्या का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और इन मनोवृत्तियों को परत-दर-परत उघाड़कर सामने रखा है जो अपनी विकृतियों का परिणाम आम जन को भोगने के लिए मजबूर करती हैं। देश-विभाजन के समय हुए साम्प्रदायिक दंगों की स्मृति उपन्यासकारों के मस्तिष्क में लम्बे समय तक बनी रही, जिसकी अभिव्यक्ति अनेक उपन्यासों में हुई। कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' से पहले अपने उपन्यास 'लौटते हुए मुसाफिर' (1961) में साम्प्रदायिक हिंसा के अमानवीय पक्षों और पाकिस्तान के नाम पर छले गये मुसलमानों के मोहभंग को चित्रित किया है।

इसी क्रम में आगे राही मासूम रजा ने लगभग अपने आधे से अधिक उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या का चित्रण किया है। आधा गाँव (1966), 'टोपी शुक्ल' (1969), 'हिम्मत जौनपुरी' (1969), 'ओस की बूंद' (1970), 'दिल एक सादा कागज' (1973) आदि उपन्यासों में देश विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिक दंगों से बचकर आए शरणार्थी परिवारों की समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। बदिउज्जमा ने भी 'छाको की वापसी' (1975) में देश के विभाजन के बाद बिहार से पूर्वी पाकिस्तान गए मुसलामानों के मोहभंग का चित्रण किया है। आगे चलकर साम्प्रदायिकता की समस्या पर विचार मंजूर एहतेशाम ने अपने उपन्यास 'सूखा बरगद' (1986) और नासिर शर्मा ने 'जिन्दा मुहावरे' (1993) में किया है।

साम्प्रदायिकता की समस्या से जोड़कर लिखे गए उपन्यासों में अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (1986) भी महत्त्वपूर्ण है जिसमें उपन्यासकार ने मज़हबी कट्टरपन और साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा परखा है। वहीं 'मुखड़ा क्या देखें' में उपन्यासकार ने साम्प्रदायिक दुर्भाव में वृद्धि के कारणों पर चिंता जताई है। ज्योतिष जोशी ने भी 'सोनबरसा' (2000) में साम्प्रदायिक उन्माद से ग्रस्त होते एक गाँव की कथा प्रस्तुत की है।

ज्योतिष जोशी की इस साम्प्रदायिकता संबंधी चिंता को विस्तार भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास 'काला पहाड़' में दिया है। अपने धर्म के प्रति कट्टरता का भाव किस प्रकार भोले-भाले लोगों के मन में भरा जाता है । अफवाहों के द्वारा अविश्वास, आतंक और भय पैदा कर उसे साम्प्रदायिक बना दिया जाता है। इसका यथावत चित्रण इसमें देखने को मिलता है।

सदी के अंतिम दशक में उपन्यासकारों ने देश में बढ़ते साम्प्रदायिक उन्माद की परिस्थितियों और उनके कारणों की तलाश करने की कोशिश की है। जो साम्प्रदायिक मनोभाव आगे चलकर दंगों का रूप धारण कर लेती है उसकी पड़ताल की है। जिसमें अमृतलाल मदान का 'सिन्धुपुत्र' (1991), दीपचंद निर्मोही का 'कितने अँधेरे' (1995), हरदर्शन सहगल का 'टूटी हुई ज़मीन' (1999), राजीव कुमार कृत 'टुकड़े' आदि को देखा जा सकता है। राजीव का 'टुकड़े' उपन्यास में साम्प्रदायिक नफ़रत और धर्मान्धता पैदा करने वाले तत्त्वों का पर्दाफाश किया गया है। प्रियंवद के उपन्यास 'वे वहाँ कैद हैं' (1995) में सम्प्रदायवाद और उसके भीतर पनपते हुए फासीवाद के ख़तरे की पहचान की गई है । साम्प्रदायिक सोच और फासीवाद पर सर्जनात्मक विमर्श की दृष्टि से यह उपन्यास अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। गीतांजलिश्री के 'हमारा शहर उस बरस' (1998) में हिन्दू साम्प्रदायिकता का विशद चित्रण किया गया है। उपन्यास में एक शहर है, जहाँ शिक्षा स्थलों के माध्यम से साम्प्रदायिक हवा बनायी जाती है और फासीवाद रहस्यपूर्ण और आतंक से भरी दुनिया का सृजन किस प्रकार करता है इसका चित्रण हुआ है। भगवान सिंह के उपन्यास 'उन्माद' (1997) में भी साम्प्रदायिक उन्माद किस प्रकार फैलाया जा रहा है इस पर विचार किया गया है।

दूधनाथ सिंह का बहुचर्चित उपन्यास 'आख़िरी कलाम' बाबरी मस्जिद विध्वंस पर केन्द्रित है। जिसमें बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना का जांच पड़ताल किया गया है। 'आख़िरी कलाम' के तीन प्रमुख पात्र प्रो. तत्सत पांडे, सर्वात्मन और बिल्लेश्वर हैं। तत्कालीन अयोध्या में तनाव, विद्वेष और आशंका के माहौल की चपेट में प्रो.तत्सत आ जाते हैं। जिसमें कारसेवकों के

गुस्से का शिकार प्रो. तत्सत हो जाते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है। उपन्यास में हिन्दू फासीवादी ख़तरे की पृष्ठभूमि पर धर्म, धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र, मीडिया, मुसलमान व वामपंथ से लेकर लोहियावादी राजनीति तक का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें रामजन्मभूमि आंदोलन के पीछे का एक कारक तत्व मुसलमानों के प्रति घृणा और विद्वेष को दिखाया गया है। रामजन्मभूमि आंदोलन ने देश के मुसलमानों के मन को कितना आहत किया है, उपन्यास इसे भी उद्घाटित करता है। उपन्यास के एक और पात्र मियाँ जमील के माध्यम से लेखक यह बताते हैं कि फैजाबाद में हिन्दुओं और मुसलमानों की जो साझी संस्कृति विकसित हुई थी, उसे किस तरह रामजन्मभूमि आंदोलन ने नष्ट कर दिया था। इस त्रासदी ने मुसलमानों में किस प्रकार असुरक्षा बोध पैदा किया इसका चित्रण हमें उपन्यास में देखने को मिलता है।

इसी परम्परा में आगे कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' को देखा जा सकता है। यह सन् 2000 में प्रकाशित और सन् 2003 में भारतीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ। उपन्यास हिन्दू, मुसलमान, सिख, सब की ओर लगातार सवाल खड़े करता है। 'कितने पाकिस्तान' में कमलेश्वर अपने विलक्षण इतिहासबोध से भारत की पांच हजार वर्ष लम्बी परम्परा में इतिहास में हुए विभाजनकारी प्रसंगों को तालमेल के साथ सामने रखते हैं। इसमें उपन्यासकार ने गिलगमेश, एकिंदू, अशोक, बाबर, औरंगजेब, से लेकर अशोक सिंघल, गांधी, जिन्ना और इतिहास के अनेक नायक और खलनायकों को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की है। कमलेश्वर ने 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास के माध्यम से विश्व में चल रहे विभाजन और विध्वंस की राजनीति के कारणों और वजहों का विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उपन्यास में भारत विभाजन से लेकर निकट वर्तमान में हो रहे विभाजन और विखंडन के कारण पैदा होने वाली मानवीय त्रासदी का वर्णन किया गया है। विभाजन की यह राजनीति मानव जाति के भविष्य के लिए कितनी खतरनाक है इसके बारे में सोचते हुए कमलेश्वर अपने एक पात्र के माध्यम से लिखते हैं- "अदिव चीखा- "सुनो कराची के बासिंदों ! जितना जो कुछ टूट गया उसे भूल जाओ। जो कुछ टूटने के

बाद है, उसे टूटने से बचाओ। जितने मुल्क बनेगें वे सिर्फ इंसान को तंग करेगें। जरुरत से ज्यादा इस दुनिया का बंटवारा हो चुका है.....खुदा के लिए इस बंटवारे की जहनियत को ख़त्म करो ।"[1]

कमलेश्वर ने सभी धर्मों से इतर एक ऐसे समाज की परिकल्पना की है जिसके निवासी अपने अपने धर्म की धर्मांधता का विरोध करते हुए नवीन मानव धर्म की स्थापना करेंगे। इस तरह उपन्यास अन्धकार में घिरी मानवता के सामने एक आशा की किरण के रूप में दिखाई पड़ता है।

हिंदी भाषा से इतर अन्य भाषाओं में भी साम्प्रदायिकता संबंधी साहित्य रचा गया है। समाज में फैले साम्प्रदायिक प्रवृतियों की पहचान हिंदी से इतर अन्य भाषाओं में रचित साहित्य में भी देखने को मिलती है। तसलीमा नसरीन का 'लज्ज़ा' उपन्यास और कर्तुलऐन हैदर का 'आग का दरिया' इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में हम तसलीमा नसरीन के उपन्यास 'लज्ज़ा' को देख सकते हैं जिसमें उन्होंने साम्प्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता जैसे संवेदनशील प्रश्नों पर विचार किया है। इसमें उन्होंने धर्म और राजनीति के खेल को पहचानते हुए धर्म और राजनीति के छद्म रूप का पर्दाफाश किया है। साम्प्रदायिकता की भयावहता से भलीभांति परिचित तसलीमा नसरीन उसके कारणों की जाँच पड़ताल 'लज्ज़ा' में करती हैं। उपन्यास में आए एक प्रसंग में वह लिखती हैं कि- "ठीक ही कहा आपने ! वे लोग सौ-सौ मंदिर तोड़ रहे हैं और हम लोग यदि किसी मस्जिद पर एक भी पत्थर भी फेंकें तो क्या होगा ! चार सौ साल पुरानी रमना कालीबाड़ी को पाकिस्तानियों ने धूल में मिला दिया, किसी भी सरकार ने तो नहीं कहा कि फिर से बनवा देंगे।"[2]

इसी क्रम में कर्तुलऐन हैदर के उपन्यास 'आग का दरिया' को भी देखा जा सकता है। सन् 1959 में प्रकाशित इस उपन्यास को आज़ादी के बाद लिखे जाने वाले बड़े उपन्यासों में स्थान मिला जिसमें उन्होंने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से लेकर सन् 1947 तक की भारतीय समाज की

---

[1]. कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, पृष्ठ संख्या-153

[2]. तसलीमा नसरीन, लज्ज़ा, पृष्ठ संख्या-92

संस्कृति और दार्शनिक बुनियादों को समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है। उनका मानना है कि जरूरी नहीं कि हम इतिहास की चारदीवारी के पीछे कैद हो जाए। जरूरी यह है कि हम उसके ऊपर तने मकड़ी के जाले झाड़पोछ कर साफ कर दें। इस प्रकार उपन्यासकार ने हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के बीच साम्प्रदायिक सद्भाव को एक करने की कोशिश की है। इस प्रकार अगर व्यापक फ़लक पर इस समस्या को देखें तो हम पाते हैं कि साम्प्रदायिकता विरोधी लेखन को सबसे ज्यादा देश के विभाजन ने और इसके बाद रामजन्मभूमि विवाद ने प्रभावित किया है।

साम्प्रदायिकता हमेशा से दो स्तरों पर काम करती चली आ रही है और अब भी कर रही है। पहला धर्म के स्तर पर और दूसरा जाति के स्तर पर। धर्म के नाम पर समाज को वह 'हम और वे' में बाँट देती है तो जाति के नाम पर वह अपने ही भीतर धर्म के नाम पर 'शुद्ध और सच्चे' धार्मिकों को छाँट कर अलग करती चली जाती है। इस तरह जातिवाद और वर्णवाद इसके पर्याय बनते हैं। जहाँ एक ओर धर्म के आधार पर छाँटे जाने पर विधर्मी दुश्मन होते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने धर्म के भीतर छाँटे गए लोग 'धर्मद्रोही' होते हैं। साम्प्रदायिकता अपनी राजनैतिक योजनाओं के अनुरूप धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि की व्याख्याएँ लोगों में इस तरह करता है कि उनकी धार्मिक भावनाएँ और अधिक उग्र हो उठती हैं। इसके कारण उन्हें सब 'अपनी ही लड़ाईयाँ' लगने लगती हैं। इसी साम्प्रदायिक भावना से ओत-प्रोत लोग अपने धर्म को पुनर्स्थापित करने के लिए हर क्षण मर मिटने के लिए तैयार रहते हैं।

धर्म, इतिहास और संस्कृति आदि की शुद्ध और वास्तविक व्याख्या और व्यवस्था देना केवल कुछ 'पहुँचे हुए' अपने हाँथ में सुरक्षित रखते हैं। यही लोग यह भी तय करते हैं कि 'विधर्मी या अधार्मिक' कौन है और साथ ही धर्मद्रोही कौन है ? वर्तमान संदर्भ में अगर देखें तो 'कुछ पहुँचे हुए लोगों' में हम धार्मिक राजनेताओं और संत-महंत, पुजारियों-पुरोहितों आदि लोग को रख सकते हैं जिन्होंने यह सब अपने हाथ में सुरक्षित किया हुआ है। उपन्यास 'त्रिशूल' में भी 'कुछ पहुँचे हुए' पद पर शास्त्री जी जैसे लोग बैठे हुए हैं जो धर्म, संस्कृति और इतिहास की अलग

और गलत व्याख्या तो करते ही हैं साथ ही 'महमूद' जैसे विधर्मी वहाँ रहेंगे या नहीं यह भी तय करते हैं। यह पूरा खेल शक्ति और सत्ता का ही है। जिसके लिए धर्म, जाति, इतिहास, संस्कृति आदि को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें बाहर वालों से धर्म के नाम पर तो 'भीतर' वालों के साथ 'जाति की शुद्धता' के नाम पर लड़ा कर कुछ स्वार्थी और सत्ताधारी अपना काम निकालते रहते हैं।

इस संबंध में राजेंद्र यादव जी ने भी लिखा है कि "नाम वे राष्ट्र और संस्कृति, धर्म और इतिहास का लेते हैं, मगर असली स्वार्थ होता है शक्ति और सत्ता हथियाना।.....खुद ही व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से दुश्मनों और 'विरोधियों' को ठिकाने लगाते रहतें हैं। .....उधर मुसलमानों के लिए बाहरी दुश्मन हिन्दू हैं तो भीतरी दुश्मन सलमान रूशदी या तस्लीमा नसरीन जैसे लोग.....वहाँ बाहरी साम्प्रदायिकता, भीतर कहीं शियाओं अहमदियों को छोटा करने में व्यक्त होती है, तो कहीं अजलफ़, अशरफ के बंटबारे में।"[1]

जो साम्प्रदायिकता धर्म के आधार पर बाहरी लोगों को दुश्मन मान कर लड़ाती है उसी धर्म के अंतर्गत जातियों की ऊँच-नीच के तहत उसी धर्म के मंदिरों में प्रवेश निषेध हो जाता है। साम्प्रदायिकता की इस दोहरी प्रक्रिया एवं इसके कारणों और तथ्यों को लक्षित करते हुए राजेन्द्र यादव ने 'कांटे की बात' में इसे 'दुधारी तलवार' कहा है। वास्तव में दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस प्रकार धर्माधारित साम्प्रदायिकता बाहर म्लेच्छवाद और भीतर जातिवाद की जननी है।

साम्प्रदायिकता का एक वर्ग भी है। पूंजीवादी समाज में जहाँ समूचा समाज उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच विभाजित होता है वहाँ साम्प्रदायिकता का प्रभाव भी अलग-अलग वर्गों पर अलग-अलग रूप में पड़ता है। साम्प्रदायिकता को भड़काने में उच्चवर्ग और उच्च मध्यवर्ग एक अहम भूमिका निभाते हैं। साथ ही वो इसकी त्रासदी से दूर स्वयं को सुरक्षित भी रखते हैं। इस

[1]. राजेन्द्र यादव, कांटे की बात(६), पृष्ठ संख्या-139

साम्प्रदायिकता को फैलाने के दौरान न तो इस वर्ग में साम्प्रदायिक उन्माद होता है और न ही किसी भी प्रकार की जातिगत भावुकता इसमें पाई जाती है। इस वर्ग का अंतिम लक्ष्य आर्थिक लाभ के प्रति ही देखा जाता है। यह वर्ग ही दंगे करवाता है और शांति के समय एक-दूसरे के सहयोगी बन जाता है। दंगों और फसादों में आम जनता का जहाँ सब कुछ नष्ट हो जाता है वहीं ये अपना सब कुछ सुरक्षित रखते हैं।

साम्प्रदायिकता संबंधी अब तक जितने भी उपन्यास लिखे गए हैं लगभग भारत विभाजन की त्रासदी की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं या उनका आधार अयोध्या में चल रहे बाबरी मस्जिद विवाद पर केन्द्रित रहा है। 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता की समस्या भी बाबरी मस्जिद विवाद को आधार बना कर लिखी गई है। 'त्रिशूल' हो या इस समस्या से संबंधित अन्य उपन्यास उसमें अभिव्यक्त समस्या के तात्कालिक कारण जितने भी निकाले जाएँ परन्तु उसकी पृष्ठभूमि की तैयारी हमेशा ही बहुत पहले कर दी जाती है। साम्प्रदायिकता के कारणों में हमेशा धर्म को मूल कारण के रूप में दिखाया जाता है। जब कि सच्चाई यह है कि धर्म का इससे कोई विशेष संबंध नहीं है। अभी तक इस समस्या पर लिखे गए उपन्यासों पर गौर करें तो हम पाएंगे कि साम्प्रदायिकता धार्मिक नहीं है बल्कि राजनीतिक वर्चस्व के संघर्ष का परिणाम है। धर्म में भावना के पुट होने के कारण लोगों को एकत्रित करने की क्षमता इसमें होती है। इसी कारण धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है। दूसरे सम्प्रदाय के प्रति पूर्वाग्रह, झूठी अफवाहें, भ्रामक इतिहास, धार्मिक ग्रंथों को इतिहास के रूप में देखना आदि ही साम्प्रदायिकता को जन्म देती है जिसे 'त्रिशूल' के साथ-साथ और भी साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यासों में भलीभांति देखा जा सकता है।

द्वितीय अध्याय

'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता का स्वरूप और समस्या

शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल' भारत की एक प्रमुख समस्या 'साम्प्रदायिकता की समस्या' पर आधारित है। 'त्रिशूल' के कथानक का संबंध बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में किस तरह उत्तर भारत में साम्प्रदायिक राजनेता, धार्मिक नेता और उनके स्वयं सेवक जुलूस, सभाओं, शिलापूजन और तत्कालीन जन-संचार माध्यम आदि के साथ मिलकर मुस्लिम समुदाय के खिलाफ आतंक और दंगे का माहौल तैयार करते हैं। 'त्रिशूल' उस सत्य को परत दर परत उघाड़ता है।

'त्रिशूल' (1995) उपन्यास जितना चर्चित हुआ उतना ही उसे वाद-विवाद का सामना भी करना पड़ा। 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप को देखें तो सर्वप्रथम उपन्यास का शीर्षक एक प्रतीक का काम करता है। उपन्यास का शीर्षक जो कि 'त्रिशूल' है वह अपने आप में खास किस्म की साम्प्रदायिकता को इंगित करता है। परन्तु, इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर स्वरूप स्वयं शिवमूर्ति जी ने एक साक्षात्कार के दौरान यह कहा है कि "त्रिशूल का अर्थ मेरे अनुसार समाज के तीन शूल हैं। जातिवाद का, साम्प्रदायिकता का और पुनर्जन्म की अवधारणा का। आप इसे विश्व हिन्दू परिषद या साधुओं के अस्त्र के रूप में ही मत लीजिये। समाज कई स्तरों पर खंड-खंड में बंटा है।"[1]

इस प्रश्न के उत्तर से यह तो साफ हो जाता है कि 'त्रिशूल' शीर्षक से उपन्यासकार का क्या अभिप्राय है। शिवमूर्ति जी के उपन्यास 'त्रिशूल' में साम्प्रदायिक राजनीति के उभार के साथ-साथ दलित राजनीति की मुखर अभिव्यक्ति को केंद्र में रखा गया है। समाज में जब-जब पूंजीवादी और

[1] लमही, अक्टूबर-दिसंबर 2012,सं-ऋत्विक राय, (साक्षात्कार) शिवमूर्ति- ओमा शर्मा,पृष्ठ संख्या-18

साम्राज्यवादी उभार आता है तब-तब साम्प्रदायिक और सामन्ती ताकतें उभर कर समाज में आती हैं। नब्बे के दशक के आरम्भिक दौर पर ध्यान दें तो भारत के हिंदी प्रदेशों में दलित राजनीति और साम्प्रदायिक राजनीति दोनों के उभार का समय एक ही है। इस समय दोनों ही अपने उग्र रूप में दिखाई देते हैं। नब्बे के दशक के इस पूरे परिदृश्य को ध्यान में रखकर 'त्रिशूल' की कथा रची गयी है। जिसमें साम्प्रदायिक राजनीति के तहत पहले से बनी योजना के कारण होने वाले दंगे और उससे होने वाली क्षतियों को उजागर किया गया है।

उपन्यास की शुरुआत बाबरी रामजन्मभूमि विवाद के दौरान चल रहे साम्प्रदायिक तनाव ग्रस्त माहौल से होती है। 'त्रिशूल' के आरम्भ में उपन्यासकार के सामने कहानी का आरम्भ कहाँ से करे इस को लेकर असमंजस की स्थिति होती है और वे इस प्रकार आरम्भ करते हैं -

"कहाँ से शुरू करूँ महमूद की कहानी ?

वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीटकर ले जा रही थी.....चौराहे पर लाठियों से पीट रही थी और मुहल्ले का कोई आदमी बचाने के लिए आगे नहीं आ रहा था।

या.....जब उसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे,

"बोल साले, जै सिरी राम ....."[1]

यहाँ केवल कुछ लोग महमूद से "जै सिरी राम" कहलवाने की जिद नहीं कर रहे थे और न ही केवल महमूद ही इन सब के बीच अकेला फँसा हुआ था। यहाँ 'कुछ लोग' से तात्पर्य उन तमाम कट्टर हिन्दुत्ववादी धार्मिक लोगों से है जो 'एक विशेष संगठन' के बनाये पथ पर चलने और उनके उद्देश्यों को पूरा करने में लगे हुए थे। तात्कालीन समय में यदि देखा जाए तो केवल महमूद की ही यह दशा नहीं थी बल्कि भारत के तमाम अल्पसंख्यकों की व्यथा-कथा का प्रतीक महमूद था।

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-05

1.1. 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक मनोभाव:-

उपन्यास में आए प्रमुख पात्रों में 'महमूद', 'शास्त्री जी', 'नैरेटर', 'पाले' आदि हैं। जिसमें शास्त्री जी धर्मनिरपेक्षता से ज्यादा साम्प्रदायिक भावना को अहमियत देने वाले और एक विशेष संगठन के उद्देश्यों के वाहक के रूप में सामने आये हैं। शास्त्री जी अपनी धार्मिक भावना से इस प्रकार ग्रसित हैं कि हिन्दू धर्म के अलावा उन्हें न कोई धर्म सुनाई देता है और न ही दिखाई देता है। शास्त्री जी एक ऐसे व्यक्ति हैं जो किसी भी व्यक्ति के रहन-सहन को देख कर तुरंत उसे अपने धर्म के पक्ष या विपक्ष में ग्रहण कर लेते हैं साथ ही उस व्यक्ति की आस्था या अनास्था पर अपनी मुहर लगा देते हैं। इस बात से शास्त्री जी का कोई मतलब नहीं है कि सामने वाला उस विषय पर कैसी राय रखता है। इसका एक दृश्य हम तब देखते हैं जब नैरेटर शास्त्री जी के कॉलोनी में रहने आता है और जब उसके सामान के साथ उसकी गाय को ट्रक से उतारा जाता है तब शास्त्री जी गाय देख कर कहते हैं-

"गाय पालने के लिए कोटिश: धन्यवाद स्वीकारें।"

"अरे ! इसमें ऐसा खास क्या है ? मैंने हाथ जोड़ दिया "

"क्यों नहीं साहब ! गाय पालकर आप सच्चे हिन्दू का धर्म निबाह रहे हैं।

गो-ब्राह्मण की सेवा ! आपको देखकर ही लगता है कि आप आस्थावान व्यक्ति हैं।

और जीवन का मूल है- आस्था।"[1]

जिस प्रकार यशपाल ने 'झूठा सच' में साम्प्रदायिक चेतना को लोगों के दिमाग में बैठी हुई जड़ता और विवेकहीनता से जोड़ा है, उसी प्रकार शास्त्री जी द्वारा कहे गए उपर्युक्त कथन से उनके दिमाग में बैठी हुई जड़ता और विवेकहीनता का पता चलता है जिसे शिवमूर्ति जी ने

[1]. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-07

बखूबी उजागर किया है। यह जड़ता जिस प्रकार घर के बाहर शास्त्री जी जैसे पुरुष पात्रों में बैठी हुई है वैसे ही घर के भीतर स्त्री चरित्रों में भी थोड़े कमतर रूप में इसका परिचय मिलता है। जब लालबहू को यह पता चलता है कि महमूद मुसलमान है तब उनकी प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार होती है -

"हमारे घर में तो नहीं माना जाता यह सब।"

"आप क्यों मानेगीं ? आप लोग तो खुद ही आधे मुसलमान होते हैं।

लेकिन हमारा खानदान 'सरजूपारी' है।.....और अयोध्या में रामलला की जन्मभूमि को 'भरिष्ट' करने वाले कौन हैं ? इस समय चौतरफा आग लगाने वाले कौन हैं ? इसी के बाप दादे तो।.....जाओ बहिन। .... "आपने धरम 'भरिष्ट' करवाकर छोड़ा। हमें अपनी बराबरी पर उतारकर छोड़ा।"[1]

साम्प्रदायिकता का प्रचार प्रसार हमेशा झूठे तर्कों के आधार पर किया जाता है। साम्प्रदायिक प्रचार करने वाले का स्वार्थ सदैव इसमें निहित रहता है। जिसमें राजनीतिक कारणों को धर्म का मुखौटा पहनाकर हिन्दू-मुस्लिम को मंदिर, मस्जिद के नाम पर लड़ा कर साम्प्रदायिक दंगे करवाए जा रहे थे। एक विशेष साम्प्रदायिक संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने वाले और उनके मार्ग को और भी ज्यादा प्रशस्त करने वालों में उपन्यास के एक पात्र शास्त्री जी भी ऐसे ही कार्य करते नजर आते हैं। वे हमेशा बेबुनियाद तर्क प्रस्तुत करते हुए हिन्दुओं को उच्च और मुसलमानों को हीन साबित करने में लगे रहते थे। उपन्यास में आए एक प्रसंग में वे कहते हैं कि "मैं कहता हूँ, अभी भी वक्त है कि उन 'कटुओं' को खदेड़कर पाकिस्तान भगा दिया जाए। वरना पचास साल बाद क्या होगा जानते हैं ?"

[1]. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या- 29

".....एक-एक ! मुसल्ला चार-चार शादी कर रहा है और एक-एक से चौदह-चौदह बच्चे निकाल रहा है। परिवार नियोजन इनके लिए हराम है। यही रफ्तार जारी रही तो पचास साल बाद देश की दो तिहाई आबादी मुसलमान होंगे तब दो तिहाई बहुमत से देश का संविधान बदला जाएगा और भारतवर्ष 'इस्लामिक कंट्री' घोषित होगी। देश के सारे मंदिर को तोड़कर मस्जिदें बनाई जाएँगी। हजारों हजार बाबरी मस्जिदें। भारत माता जार जार रोएगी। मैं साफ साफ देख रहा हूँ, देश फिर बाबर की संतानों की गुलामी में जकड़ा जाने वाला है।"[1]

इस कथन से शास्त्री जी अपनी धार्मिक भावना से किस हद तक जकड़े हुए थे इसका पता चलता है। परन्तु राममंदिर आन्दोलन के समय शास्त्री जी अपनी इस धार्मिक भावना के प्रति और भी अधिक प्रतिबद्ध हो जाते हैं। शास्त्री जी का यह प्रतिबद्ध रूप हमें उनके इस कथन में स्पष्ट नजर आता है जिसमें वे हिन्दू धर्म का खुल कर पक्षपात करते हुए अपने कुतर्कों को मुस्लिम धर्म के विरोध में प्रस्तुत करते हैं -

"लम्बे काल प्रवाह में अच्छी व्यवस्था में खामी आ जाती है। लेकिन हमारा मुख्य उद्देश्य सदैव आस्था और भय के माध्यम से समाज का नियमन करना ही रहा है। अब जिस रूपाकार विशेष से, जिस स्थल विशेष से हमारे जनमानस की आस्था जुड़ गई है, उसका अपमान होता है तो जनमानस इसमें सीधे-सीधे अपना अपमान देखता है। आप काशी में, मथुरा में जाकर देखिए किस तरह मंदिर की छाती पर चढ़कर मस्जिद मूंग दल रही है इसी मथुरा में सिकंदर लोदी ने मंदिरों को तोड़कर मूर्तियों के भग्न अवशेषों से कसाईयों के बटखरे बनवा दिए थे। हमारे इन मर्म स्थलों पर आक्रान्ताओं को घाव करने की क्या जरूरत थी ? और अगर यह ज्यादती, यह भूल हुई है तो इसे सुधार क्यों नहीं जा सकता ?"[2]

---

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-19

[2] वही, पृष्ठ संख्या-22

इस प्रकार के कथन से शास्त्री जी की कट्टर धार्मिक भावना का पता चलता है । जो साम्प्रदायिकता जैसे आग को हवा देने का काम करती है तथा इसे और भयावह बनाती है । इस प्रकार की सोच से अपने धर्म का कितना भला होता है यह तो तय नहीं किया जा सकता पर जिस धर्म का विरोध किया जा रहा होता है उसके प्रति हिंसात्मक रूख बहुत ही ज्यादा भयानक अवश्य हो जाता है । हमें यह याद रखना चाहिए की इतिहास से हमेशा सीख ली जाती है न कि उससे बदला लिया जाता है और जब-जब इतिहास से बदला लेने का विचार शास्त्री जी जैसे लोग सोचते हैं तब-तब बाबरी मस्जिद विध्वंस जैसे परिणाम हमको देखने को मिलते हैं।

2.2. 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता का स्वरूप:-

आज देश की सबसे बड़ी समस्याओं में साम्प्रदायिकता की समस्या को गिना जा सकता है । 'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता के स्वरूप को ज्यादा गंभीर बनाने में झूठी अफवाहों और जनसंचार के माध्यमों का गलत तरीके से प्रचार-प्रसार की अहम भूमिका देखी जा सकती है । शास्त्री जी भी अपनी बेबुनियाद बातों और अफवाहों को भी इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं । वे मुस्लिम समुदाय और हिन्दुओं को दो अलग-अलग छोर पर रखने का हर संभव प्रयास करते हैं। हद तो तब हो जाती है जब वे नैरेटर के घर आकर मुस्लिम समुदाय के खिलाफ न जाने किस कुरान से उद्धरण लाकर कहते हैं कि "उनके धर्म ग्रन्थ कुरान में उनके पैगम्बर ने साफ-साफ 'डिकलेयर' कर दिया है- आज से हजार बरस पहले कि निस्संदेह काफिर इस्लाम के खुले दुश्मन हैं। उन्होंने चेतावनी दी है कि खबरदार ! काफिरों को अपना मित्र मत बनाओ । ललकारा है कि इस्लाम में ईमान लाने वाले, उन काफिरों से जंग करो जो तुम्हारे आसपास हैं।"[1]

'त्रिशूल' में अभिव्यक्त नब्बे के दशक में साम्प्रदायिक दंगे से भरे पूरे परिदृश्य पर अगर ध्यान दें तो उस समय भी झूठी अफवाहों और जनसंचार के माध्यमों के गलत उपयोगों द्वारा ही आम

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-33

लोगों में साम्प्रदायिक भावना कूट-कूट कर भरी जा रही थी। शहर तक तो ठीक था पर गाँव के दूरदराज अनपढ़ लोगों के बीच यह अफवाहें ज्यादा असरदार होती थीं। उपन्यास में रामवादी पार्टी के लोग भी आम जनों में इसी प्रकार अफवाहें फैलाते नजर आते हैं-

"अयोध्या से लौटने वाले रामभक्त अयोध्या की घटनाओं का बिना देखा हुआ आँखों देखा हाल सुना रहे हैं और चाय-पान की दुकानों पर इकठ्ठा होकर लोग श्रद्धाभाव से उनको सुन रहे हैं। उन्हें चाय पान करा रहे हैं। इन भक्तों के अनुसार भारत पाक विभाजन के समय भी ऐसी भयानक मारकाट क्या हुई रही होगी, जैसे अयोध्या से लौटने के रास्ते में होती हुई वो देखते आ रहे हैं। रास्ते में पड़ने वाले मंदिर टूट रहे हैं। मूर्तियाँ अपवित्र की जा रही हैं। मुसलमानों की दंगाई भीड़ रात में इन्हें तोड़ते हुए आगे बढ़ रही है।"[1]

इस प्रकार की अफवाहें लोगों के बीच फैलाकर उन्हें और भी ज्यादा उकसाया जा रहा था। गाँव देहात में इस तरह की अफवाहें ही अखबार का काम कर रही थी। दरअसल ये वही लोग थे जो पीछे से दंगा करवाते थे और सामने से अपने धर्म की दुहाई देते थे। लोगों के जुटने की जगहों पर जैसे चाय और पान की दुकानों पर, ऑडियो कैसेट पर और उसके साथ-साथ अयोध्या के गोलीकांड का आँखों देखा हाल सुनाया जा रहा था। उत्तेजक भाषणों के कैसेटों को बजाकर लोगों में हिन्दू धर्म के प्रति रक्षा बोध और मुस्लिम धर्म को नष्ट कर देने की भावना जगाई जा रही थी।

साम्प्रदायिक माहौल में लगभग जितने भी मुद्दे उठाये जाते हैं उनका आधार हमेशा झूठे तर्कों पर आधारित होता है। उपन्यास में आए शास्त्री जी हों या कोने वाले मंदिर का पुजारी हर कोई अपनी बातों की पुष्टि के लिए न जाने कहाँ कहाँ से बेबुनियाद तर्कों को पेश करते रहते हैं। रामवादी पार्टी का एक मात्र उद्देश्य हिन्दू धर्म की रक्षा करना था, लेकिन यह सवाल बार-बार उठता है कि हिन्दू धर्म की रक्षा किससे करना है ? उन मुसलामानों से जिनके साथ तेरह सौ वर्षों से

[1]. शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-25

साथ थे या उनसे जिनके साथ पिछले सौ सवा सौ वर्षों से धर्म के नाम पर झगड़ रहे हैं। भारत जब आज़ाद हुआ था संविधान में यह साफतौर पर घोषणा हुई कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है अर्थात् यहाँ हर धर्म के लोग स्वतंत्रता से रह सकते हैं, पर महमूद और उसके जैसे अन्य अल्पसंख्यकों को हमेशा शक की निगाह से देखा जाता है। उपन्यास में आए एक प्रसंग के माध्यम से इसे भलीभांति समझा जा सकता है-

"इतना अँधेरा था और रास्ता इतना सुनसान था कि लगता था अभी किसी खाई-खड्ढ से मुसलमानों का झुंड निकलेगा और दबोच लेगा। उसी समय घु-घु करके घुघ्घू बोला तो हिम्मत जवाब दे गई। डर के मारे पैर मन-मन-भर के हो गए। तीनों जनी उलटे पाँव लौट आईं। बिना नहाए।

ऐसे में चोर बदमाश कहाँ छिपे बैठे हों, कहा नहीं जा सकता। चर्चा चोरियों, डकैतियों और छिनैतियों की ओर मुड़ जाती है। बम और कट्टे आ जाते हैं। सारांश यह है कि बम और कट्टे बनाना तो मुसलमानों के लौंडे पेट से सीखकर आते हैं। भागते-भागते एक जेब से मसाला निकाला, दूसरे से कागज-सुतली और लपेटकर फेंक दिया-धड़ाम।"[1]

इस घटना के माध्यम से देख सकते हैं कि महमूद और उसके जैसे अन्य अल्पसंख्यकों का केवल इतना ही दोष है कि वे मुसलमान हैं। अल्पसंख्यकों के प्रति इसी संकीर्ण सोच के कारण जहाँ महमूद का यह हाल हुआ वहीं मंदिर के कोने पर वाले मुस्लिम दर्जी के झोपड़ी में आग लगवा कर दरवाजे की कुंडी को बाहर से बंद कर दर्जी को अन्दर ही जला कर मार दिया जाता है। कारण यह है कि झोपड़ी की जगह पर मंदिर के पुजारी की नजर होती है। जिसे वह आखिरकार अपने कब्जे में ले ही लेता है। उपन्यास को पढ़ते हुए यह बार-बार महसूस होता है कि लेखक अपने कथा वर्णन में बेहद प्रमाणिक है। लेखक का मानना है कि लोगों को सही वर्गीय चेतना से बचने का तथा अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा के साथ-साथ सामने वाले धर्म की पूंजी पर कब्ज़ा

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-28

करने का एक ही उपाय है और वह है सम्प्रदायवाद के आधार पर देश का विभाजन कर देना। साम्प्रदायिकता का यह घिनौना सत्य है कि ऐसी घटनाओं के घटने पर भी उस तरह के माहौल में आश्चर्य नहीं होता कारण साम्प्रदायिकता सर्वप्रथम मनुष्य के तर्कों को उसके विवेक को नष्ट कर देती है। इस विवेक को नष्ट करने वाले चंद लोग साम्प्रदायिकता की आग लगाते हैं और उसकी आंच पर अपनी रोटी सेकते हैं, अपना स्वार्थ साधते हैं। धर्म के नाम पर जो तर्क दिए जाते हैं वह पूरी तरह से सामने वाले व्यक्ति के स्वार्थों पर आधारित होते हैं। इस कारण ऐसे माहौल में हर कोई धर्म के दिखावे के नाम पर अपनी-अपनी जेब भरने में लगा रहता है जिसे विस्तृत रूप में दर्जी और उसके बेटे के साथ घटी घटना के माध्यम से साफ-साफ समझा जा सकता है।

2.3 'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता की समस्या:-

'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता का स्वरूप और उससे उपजी समस्याओं को हम अनेक रूपों में देख सकते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण महमूद ही है जिसे बिना किसी कारण के कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उसे झूठे अपहरण के केस में गिरफ्तार कर लिया जाता है। उसका धर्म जानने से पहले सब लोग उसे चाहते थे वही लोग उसके धर्म के बारे में जानने के बाद उससे घृणा करने लगते हैं। उसे मुहल्ले का भेदी, पाकिस्तानी एजेंट और न जाने कौन-कौन सी उपाधि से विभूषित कर दिया जाता है। इसका एक अन्य रूप हमें उपन्यास में आए दर्जी और उसके बेटे के साथ घटी घटना में भी देखने को मिलता है। उपन्यास के अंतर्गत हिन्दू बहुल इलाके में हनुमान मंदिर के किनारे चौराहे पर इनकी झोपड़ी होती है, जिसमें पिता दर्जी का काम करता है और बेटा बाल काटता है। पर्व-त्यौहार पर काम बढ़ने पर बेटा-बाप के काम में हाथ भी बंटाता है। लेकिन समस्या तब शुरू होती है जब इस साम्प्रदायिक माहौल में दोनों मुस्लिम बाप-बेटे को शक की निगाह से देखा जाने लगता है। शक करने की सीमा इस हद तक बढ़ जाती है कि उनके अधिकांश ग्राहक यह सोचने लगते हैं कि "कहीं दाढ़ी बनाते बनाते गले पर ही उस्तरा न फिरा दे।

जरा सा हाथ हिलाने भर की देर लगेगी। जब अन्दर नफरत और गुस्सा भरा हो तो क्या नहीं हो सकता ?"[1]

लोगों का सोचना केवल यहीं तक सीमित नहीं रहता है। वे लोग तो उसके बेटे को 'मुहल्ले का भेद मुस्लिमों को देता है' यहाँ तक मान बैठते हैं और उस पर यह दवाब बनाया जाता है कि वो अपनी जगह छोड़ कर वहाँ से चला जाए। परन्तु आजीविका का एक मात्र साधन वही झोपड़ी रूपी दुकान को वो नहीं छोड़ते। फलस्वरूप एक दिन उसके बेटे की अनुपस्थिति में झोपड़ी की कुंडी बाहर से लगाकर बाप को अन्दर बंद कर कुछ अनजान लोग आग लगा देते हैं जिसमें बाप की मृत्यु हो जाती है- "सड़क के खम्भे की पीली रोशनी में झोपड़ी के अन्दर का दृश्य बड़ा वीभत्स है। बूढ़ा दर्जी बीच झोपड़ी में औंधे मुँह पड़ा है। ऊपर से गली राख। खूँटी पर टाँगे जले-अधजले कपड़े। सायकिल, जिसके टायर-ट्यूब और सीट जलकर राख हो चुके हैं। सिलाई मशीन की बॉडी से थोड़ा-थोड़ा धुआँ निकल रहा है।"[2]

यह सिलसिला यहीं समाप्त नहीं होता। साम्प्रदायिकता इसे पूरी तरह निगल कर ही दम लेती है। इस हादसे के अगले दिन ही "दरजी की झोपड़ीवाला स्थान एकदम साफ है। न कहीं जले हुए बाँस न फूस की राख। जमीन पर कहीं-कहीं काले दाग हैं, जिन्हें पीली मिट्टी लीप कर धुँधला कर दिया है। झोपड़ीवाली जगह पर दो चौकियाँ जोड़कर उस पर कंबल बिछाए बैठा हनुमान मंदिर का पुजारी लोटे में चाय पी रहा है। हनुमान जी ने रातोंरात दरजी की झोपड़ीवाली जमीन को अपने परिसर में मिला लिया था।"[3]

अन्ततः यह देखा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता किसी भी बहुसंख्यक इलाके में अल्पसंख्यकों का जीना किस प्रकार दूभर कर देती है। रातोंरात दर्जी की झोपड़ी को मंदिर के

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-27

[2] वही, पृष्ठ संख्या-40

[3] वही, पृष्ठ संख्या-41-42

परिसर में मिला लेना इसकी एक परिणति के रूप में देख सकते हैं तथा इस प्रकार के साम्प्रदायिक हिंसा के माध्यम से इसके वीभत्स चेहरे को पहचाना जा सकता है।

साम्प्रदायिकता एक ऐसा विष है जो किसी माहौल में फैल जाए तो वहाँ प्रेम, मातृत्त्व, पारस्परिक आदर, विनम्रता और आधारभूत मानवीय अच्छाई आदि के लिए जगह नहीं छोड़ती। उस समाज में नैतिकता और मानवीय गुणों की रक्षा करने की शक्ति समाप्त कर देती है। उपन्यास में जब साम्प्रदायिक तनाव से भरे माहौल में धीरे-धीरे शांति आने लगती है और रात का कर्फ्यू हटा दिया जाता है तब यह ऊपर से तो शांत दिखता है पर लोगों में आपसी तनाव सुलगता रहता है। इसे फिर से भड़काने का काम शास्त्री जी अपने ही बेटे का अपहरण स्वयं करवा कर करते हैं। अपहरण का केस महमूद के खिलाफ दर्ज करवाते हैं जिससे माहौल और भी ज्यादा तनाव ग्रस्त हो जाता है। उस मोहल्ले में बार-बार किसी भी घटना के लिए महमूद को ही निशाना बनाया जाता है। जिसका सिर्फ एक मात्र कारण उसका अलग 'सम्प्रदाय' का होना होता है। जबकि यह बात पूरी साफ और सबको पता थी कि महमूद बेकसूर है। स्वयं मिसराजी सब देखने और जानने के बाद कहते हैं कि "जो घटनाक्रम बन रहा है, उससे स्पष्ट है कि इसमें महमूद का हाथ नहीं हो सकता।"[1]

साम्प्रदायिकता की इस आग को फैलाने में दूसरे धर्म के विरोध में बोलने वाले अर्थात् शास्त्री जी जैसे लोग अपनी तरफ से कोई भी कसर नहीं छोड़ते हैं। साम्प्रदायिकता को बढ़ाने के लिए शास्त्री जी का स्वयं अपने ही बेटे का अपहरण करवाने की घटना सहसा भीष्म साहनी जी के उपन्यास 'तमस' के एक पात्र मुरादअली की याद दिलाती है। 'तमस' के आरम्भ में ही मुरादअली जो की एक मुसलमान है। नत्थू के हाथों उसे पाँच रूपए का लालच देकर डॉक्टरी काम के नाम पर झूठ बोलकर सूअर मरवाता है और शहर में दंगा फैलाने के लिए उसी मरे हुए सूअर को मस्जिद की सीढ़ी पर डलवा देता है। साथ ही मुसलमानों को इस बात के लिए उकसाता है कि वो भी गाय

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-69

मार कर हिन्दुओं से बदला लें। 'तमस' का मुरादअली हो या 'त्रिशूल' का शास्त्री इन जैसे तमाम पर्दे के पीछे छिपे लोगों के इरादे ज़ाहिर होते हैं कि साम्प्रदायिक माहौल के पीछे उनका हाथ कैसे काम करता है। ऐसा नहीं है कि ऐसे लोगों की चालाकियाँ किसी को समझ में नहीं आती हैं, दुःख तो इस बात का होता है जिन इक्के-दुक्के लोगों को यह सब समझ में आता भी है वो चुप रहते हैं। 'त्रिशूल' में शास्त्री के बेटे के अपहरण वाली घटना से सब परिचित हैं फिर भी ऐसी स्थिति में नैरेटर का मिसराजी से सहायता माँगने पर उनका यह कहना कि "बात यह है भाई साहब कि मुहल्ले के इस पचड़े में मैं 'न्यूट्रल' ही रहना चाहता हूँ। दरोगाजी के साथ घटी घटना आप सुन ही चुके होंगे बड़ी मिठाई थी। कीड़े पड़ गए।"[1]

जिस प्रकार 'त्रिशूल' में शास्त्री जी के बेटे के अपहरण के केस में सिर्फ एक रिपोर्ट के दर्ज होने पर महमूद को गिरफ्तार कर लिया जाता है। कारण यह है कि केस दर्ज करवाने वाले हिन्दू धर्म के नुमाइंदे हैं। दरअसल यह केस एक हिन्दू का एक मुसलमान के खिलाफ था और सुन कर रोंगटे खड़े हो जाए वैसी यातना जेल में महमूद को दी जाती है। शास्त्री जी हिन्दू धर्म के ऐसे नुमाइंदे हैं जो अपने ही बेटे का अपहरण करवाते हैं और इसकी खबर किसी को नहीं होती। यह पूरा नाटक केवल महमूद को वहाँ से निकालने का और साम्प्रदायिक तनाव को बढ़ाने के लिए था। यह वही मानसिक जड़ता है जिससे न ही हिन्दू जनमानस मुक्त हो पा रहा है और न ही मुसलमान इससे बच पा रहे हैं। साम्प्रदायिक माहौल में अगर हिन्दुओं के साथ कोई दुर्घटना हो जाती है उसका केवल एक मात्र जिम्मेदार मुस्लिम वर्ग को माना लिया जाता है और मुस्लिम समुदाय में कोई दुर्घटना हो जाए तो उसके एक मात्र दोषी हिन्दुओं को माना जाता है। जैसे शास्त्री जी के बेटे के अपहरण होते ही बिना किसी तहकीकात के महमूद को पकड़ लिया जाता है और उसे जेल की यातना सहनी पड़ती है। इससे विभूतिनारायण राय के उपन्यास 'शहर में कर्फ्यू' का एक प्रसंग याद आता है- जब शाहगंज पुलिस चौकी पर फायरिंग होती है और हर घर की तलाशी करने का

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या–69

आदेश जारी होता है पर पुलिस मुस्लिम बहुल इलाकों में ही तलाशी लेने में बर्बरता दिखाती है और अपनी पूरी शक्ति का परिचय मुस्लिम घरों की तलाशी के नाम पर लूटने के ही कार्य करने में लगाती है।

भारत की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यहाँ समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता है बल्कि एक समस्या पर दूसरी समस्या थोप कर उसे कुछ देर के लिए या तो स्थगित कर दिया जाता है या उस समस्या को एक नया रूप देकर उसे दूसरी दिशा में मोड़ दिया जाता है। 'त्रिशूल' में भी हमको यही देखने को मिलता है, जब पिछड़े वर्गों के न्याय और समानता के लिए मंडल कमीशन आयोग को लागू किया गया तब इसके प्रतिरोधियों ने इसके प्रतिकार स्वरूप रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद को एजेंडा बना कर इसे साम्प्रदायिक झगड़ों का रूप दे दिया।

ऐसे माहौल में साम्प्रदायिक ताकतों की भरपूर कोशिश यही रहती है कि वह लोग इन समस्याओं को न सुलझाएँ बल्कि इसे और अधिक उलझाएँ। अगर इस विषय पर कोई बात करना भी चाहे या कोशिश करे तो उस पर यही साम्प्रदायिक ताकतें दबाव डालकर चुप करवा देती हैं। विभूतिनारायण राय जी के उपन्यास 'शहर में कर्फ्यू' में भी जब शहर में कर्फ्यू लगने के दौरान जितने भी लोगों की मृत्यु उसमें हो जाती है उसके लिए और उन दंगों को शांत करने के लिए एक 'शांति कमेटी' का गठन होता है। जब प्रेस कान्फ्रेंस एक कमरे में शुरू हो जाती है और एक पत्रकार मरनेवालों की तथा नहर में बहा दिए जाने वालों की संख्या के बारे में पूछता है तो सरकार ठीक समाधान नहीं दे पाती और उनका मुँह कुछ चाय नाश्ते से बंद कर दिया जाता है तथा इसकी दिशा मोड़ कर पत्रकारों के 'पास' बनवाने में होने वाली देरी के कारणों पर चर्चा होने लगती है।

'त्रिशूल' सिर्फ रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद के विवाद तक सीमित नहीं है और न ही हिन्दू-मुस्लिम के साम्प्रदायिक झगड़ों पर ही समाप्त हो जाने वाला उपन्यास है। बल्कि 'त्रिशूल' में भारत विभाजन के बाद अपने देश के रूप में भारत को चुनने वाले उन अल्पसंख्यक मुसलमानों

की अस्मिता का सवाल बेहद संजीदगी के साथ उठाया गया है। जहाँ भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया जाता है और एक तरफ उन अल्पसंख्यक मुस्लिमों को पाकिस्तानी एजेंट और दंगा करने वालों के रूप में चिन्हित किया जाता है । यह अस्मिता का सवाल उन सारे अल्पसंख्यकों का है, उस दर्जी का है जिसे धोखे से जला कर मार दिया जाता है, उस महमूद का है जिसे बाज़ार में घसीट कर मारा-पीटा जाता है, पाकिस्तानी एजेंट बताया जाता है। इतना ही नहीं उसके झोले की तलाशी इस शक पर ली जाती है कि कहीं उसमे बम तो नहीं है । साम्प्रदायिक झगड़ों और फसादों में हमेशा ज्यादा नुकसान अल्पसंख्यकों का ही होता है चाहे वो 'त्रिशूल' का 'महमूद' और 'दर्जी' हो या 'शहर में कर्फ्यू' की 'सईदा' हो।

साम्प्रदायिकता किसी भी समुदाय की हो वह लोकतांत्रिक मूल्यों को हमेशा कमजोर ही करती है । यह लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करने के साथ-साथ वर्चस्ववादी सवर्ण साम्प्रदायिक समाज के हाथ भी मजबूत करती है। साम्प्रदायिकता मुस्लिम समुदाय की हो या हिन्दू समाज की, इसमें मानवता ही क्षरित होती है। शिवमूर्ति जी केवल हिन्दू साम्प्रदायिकता को ही नहीं मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भी सामने खड़ा कर उससे प्रश्न करते हैं। उपन्यास में जब 'मैं' की सिफारिशें और दौड़ भाग के उपरान्त जब महमूद जेल से छूटता है और उसे मुस्लिम समुदाय में वापस भेजने की सलाह दी जाती है तब 'मैं' महमूद को सही सलामत उसके समुदाय में पहुँचाने की जिम्मेदारी लेते हैं। लेकिन यह अनुभव कोई ज्यादा अच्छा नहीं रहता, कारण वहाँ 'मैं' के साथ भी मारपीट की जाती है। वहीं पहली बार 'काला पहाड़' नामक एक पात्र सामने आता है जिसके बारे में यह मशहूर है कि "काला पहाड़ ! सुनकर रोयें पार्रा जातें हैं । काला पहाड़ का नाम किसने नहीं सुना होगा यहाँ ? लेकिन रू-ब-रू देखने का मौका आज ही लगा। कहते हैं मलियाना हत्याकांड का बदला चुकाने के लिए सन् 87 वाले दंगे में इसने अकेले ही सत्रह लोगों को काटा

था। एक दिन में। बल्कि कुछ घंटों में। इसके शागिर्दों की संख्या सैकड़ों में है। ऐसे शागिर्द जो एक इशारे पर काटने को तैयार रहतें हैं।"[1]

मुस्लिम समुदाय में जैसा वर्णन काला पहाड़ का है ठीक वैसा ही हिन्दू समुदाय में रामभक्तों का है। साम्प्रदायिकता को बनाए रखने के लिए हिन्दू समुदाय में जो भूमिका रामभक्त अदा कर रहे थे वही मुस्लिम समुदाय में काला पहाड़ जैसे लोग के हाथों यह सब अंजाम दिया जा रहा था। काला पहाड़ जैसे लोगों के शागिर्द एक इशारे पर मरने मारने को तैयार रहते हैं। दरअसल यह उन शागिर्दों की मानसिक जकड़न है। जो कभी धर्म के नाम पर तो कभी जाति के नाम पर उनमें भर दी जाती है। साम्प्रदायिकता की बात आते ही बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता का सवाल स्वतः ही उठता है। 'त्रिशूल' में हिन्दू साम्प्रदायिकता का चित्रण हुआ है। अर्थात् बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता का उग्रतम रूप का एक छोटा परिचय इसके माध्यम से हमें प्राप्त होता है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता के सवाल के उठते ही उन कारणों की ओर ध्यान जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि दोनों को बढ़ाने वाले कारक एक ही हैं। केवल अंतर इसके प्रक्रिया के स्वरूप में पड़ता है। भले ही शिवमूर्ति जी ने महमूद को एक दब्बू चरित्र के रूप में चित्रित किया है, लेकिन इसे समग्रता में देखें तो यह अधूरा जान पड़ता है। कारण भारत के किसी भी कोने में मुस्लिम समुदाय इतना दब कर रहता नहीं दिखेगा। भले ही परिस्थिति के अनुसार महमूद का चित्रण एक दब्बू और सरल रूप में कर दिया गया है लेकिन वास्तविकता यही है कि भारत में मुस्लिम समुदाय का पक्ष भी काफी मजबूत रहा है। आज़ादी के बाद भले ही मुस्लिम वर्ग थोड़ा कमज़ोर हुआ है परन्तु इसके पूर्व ध्यान दें तो मुस्लिम समुदाय हर क्षेत्र में हिन्दू समुदाय की तरह प्रबल दावेदार के रूप में रहा है। 'त्रिशूल' में जहाँ एक तरफ महमूद की दशा हिन्दू कट्टरवादियों की वजह से होती है वहीं थोड़े दबे रूप में शिवमूर्ति जी ने काला पहाड़ जैसे पात्र

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-97-98

के दंगाई चेहरे से भी रूबरू कराया है। इस प्रकार शिवमूर्ति जी बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता पर विचार करते हुए दोनों को खतरनाक बताया है।

'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी समस्या को उपन्यासकार ने एक अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। जिसका आधार रामजन्मभूमि आंदोलन के दौरान चल रहे कारसेवकों तथा रामभक्तों आदि का अस्थि कलश बांटने का ढोंग है। यही वे कारक हैं जिनसे साम्प्रदायिकता को और अधिक बढ़ावा मिलता है। कई साम्प्रदायिकों ने हिन्दुओं में साप्रदायिक उन्माद बढ़ाने के लिए 'अस्थि कलश कार्यक्रम' का आयोजन उपन्यास के अंतर्गत किया है। इस 'अस्थि कलश कार्यक्रम' के आयोजन से तात्पर्य है- अयोध्या गोलीकांड में मरे रामभक्तों का अस्थि कलश उनके परिवार वालों के यहाँ पहुँचाने के कार्य से है। इसे थोड़ा व्यग्यांत्मक लहजे में उपन्यासकार ने रामभरोसे और घसीटे नामक दो पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। अयोध्या गए रामभरोसे और घसीटे के "लौटने में देरी के चलते घर के लोग चिंतित होते हैं- कहीं अयोध्या गोलीकांड में मरे रामभक्तों में उनके रामभरोसे और घसीटे भी तो नहीं ? पूछताछ करते हैं। पूछताछ ऊपर 'पास आन' की जाती है और अगले दिन उनका अस्थि कलश उनके गाँव में। उधर रामभरोसे और घसीटे पास का पैसा ख़त्म हो जाने, सवारी न मिल पाने या बुखार आ जाने के चलते पंद्रह दिन विलम्ब से अपने गाँव पँहुचते हैं तो उनका सौभाग्य इंतजार कर रहा होता है, उनके अपने अस्थि कलश पर उनके अपने ही करकमलों द्वारा श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का।"[1]

इस प्रकार उस तरह के माहौल को और अधिक साम्प्रदायिक तथा तनाव ग्रस्त बनाने की कोशिश की जाती है। साथ ही लोगों में धार्मिक उन्माद कूट-कूट कर भरने का हर संभव प्रयास अस्थि कलश जैसे कार्यक्रमों द्वारा किया जा रहा था।

इसी व्यंग्यात्मक लहजे में उपन्यासकार ने तत्कालीन लोगों की धार्मिक साम्प्रदायिक भावना का परिचय एक 'अनाम' पात्र द्वारा दिखाने की कोशिश की है। "अस्थि कलश का रथ

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-37

अभी घंटा भर पहले इसी चौराहे से होता हुआ शहर से बाहर गया इसके तुरंत बाद किसी खिसकढ़े आदमी की पिटाई हुई है। उसने किसी रामभक्त से पूछ लिया था- सुनते हैं आपकी पार्टी सत्ता में आई तो हनुमान चालीसा को राष्ट्रगान घोषित कर देगी।"[1]

उपर्युक्त कथन में इस पात्र द्वारा हनुमान चालीसा को राष्ट्रगान घोषित करने वाली बात वैसे तो हास्यास्पद है। लेकिन हनुमान चालीसा जो कि एक धार्मिक गीत है उसे राष्ट्रगान बनाने की बात उपन्यासकार ने इस पात्र द्वारा कहलवा कर एक बड़े खतरे की ओर इशारा भी किया है। इस इशारे से तात्पर्य उन सभी धर्मो और सम्प्रदायों पर हिन्दू धर्म का अधिकार हो जाने या उन सभी धर्मों को देश से बेदखल कर देने से भी लिया जा सकता है।

2.4. साम्प्रदायिकता और जातिवाद का अंत:संबंध और 'त्रिशूल'

'त्रिशूल' की कहानी एक ओर हिन्दू और मुस्लिम समुदाय की साम्प्रदायिकता के अनेक पक्षों का उद्घाटन करती है तो दूसरी ओर हिन्दू समाज के जातिवादी मुखौटे का भी उद्घाटन करती है। जातिवाद की अनेक परतें 'त्रिशूल' में परत-दर-परत कर खुलती जाती है। हिन्दू समाज में ऊँची और नीची कही जाने वाली जातियों के बीच साम्प्रदायिक शक्तियाँ किस प्रकार घुस कर अमन और चैन को नष्ट कर देती है, इसकी पहचान 'त्रिशूल' में शिवमूर्ति जी ने की है। जातिवाद रुपी जहर साम्प्रदायिकता की आग की तरह किसी भी समाज के लिए भयावह है। साम्प्रदायिकता जिस प्रकार समाज को दो भागों में विभक्त करती दिखाई देती है। उसी प्रकार जातिवाद एक समाज को कई हिस्सों में बांट देती है। ऐसी स्थिति में जातिवाद और साम्प्रदायिकता का मिलाजुला रूप कहीं ज्यादा मारक है।

एक साक्षात्कार के दौरान शिवमूर्ति जी से पूछा जाता है कि जातिवाद और साम्प्रदायिकता में ज्यादा खतरनाक कौन है ? पूछे जाने पर वे कहते हैं कि "एक नागनाथ है तो दूसरा साँपनाथ।

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-38

साम्प्रदायिकता समाज को दो भागों में विभक्त करती दिखाई देती है लेकिन बहुत सारे मामलों में वह कम मारक है। धर्म के अलावा हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के प्रति सहिष्णु है लेकिन जाति के मामले में समाज ज्यादा असहिष्णु है। गाँव के एक ठाकुर और यादव की मानसिकता के बीच का सनातन तनाव भी है। वे कभी भी एक-दूसरे का पूरी तरह विश्वास करने की स्थिति में नहीं हैं। छुआछूत के मामलों में देखिए की कोई सवर्ण क्या पिछड़ा भी उसके बर्तन में पानी पीने को तैयार नहीं है। हमारे गाँव या उसके आसपास के कई गाँवों में कोई मुसलमान नहीं है तो गाँव वाले साम्प्रदायिकता के बारे में सोचते ही नहीं हैं जबकि जातिवाद उनकी रगो में भरा पड़ा है।"[1]

साम्प्रदायिकता और जातिवाद वैसे तो दोनों ही सामाजिक बीमारियाँ हैं पर जिस स्थिति में आज जातिवाद है उसे अगर साम्प्रदायिकता के सामने रख कर देखा जाए तो पता चलता है कि देर सवेर साम्प्रदायिकता अप्रासंगिक हो भी जाए मगर जातिवाद अभी लम्बे समय तक चलेगा। मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के साथ-साथ पूरा हिन्दू समाज दो फांकों में बंट जाता है। एक भाग आरक्षण समर्थक तो दूसरा आरक्षण विरोधी वर्ग के रूप में सामने आता है। दरअसल यह आरक्षण समर्थक या आरक्षण विरोधियों का विभाजन नहीं होता है। यह 'ऊँची' और 'नीची' जातियों के बीच शत्रुतापूर्ण ढंग से विभाजन होता है। ऐसी स्थिति में उपन्यास में एक पाले नामक पात्र उभरकर सामने आता है। पाले जन भाषा में क्रांतिकारी गीत गाकर जन जागरण लाने की कोशिश करता है। पाले 'ऊँची जाति' के हिन्दुओं की वास्तविकता को, उनके द्वारा 'नीची जातियों' पर किए जाने वाले अत्याचारों को बिना भय के सार्वजनिक रूप से व्यक्त करता है।

गाँव के लोगों में हिन्दुत्व के नाम पर साम्प्रदायिक भावना भरने का जो प्रयास हो रहा होता है, पाले उसे बखूबी पहचानता है। इसलिए अयोध्या जाने के लिए उकसाए गए लोगों को वह समझाता है और सवर्णों की मानसिकता का भांडा फोड़ अपनी गीतों के माध्यम से करता है। इसी

[1] लमही, २०१२, सं-ऋत्विक राय, अक्टूबर, पृष्ठ संख्या -18

कारण रामवादी पार्टी की फितरत से पाले की हत्या करवा दी जाती है । यहाँ हमें जातिवादी राजनीति का हिंसक रूप देखने को मिलता है। यहाँ सवर्ण या सामन्ती मानसिकता साम्प्रदायिक व्यवहार के साथ पूर्ण साँठ गाँठ के साथ चलती है । यही गठजोड़ पाले और उसके जैसे तमाम लोगों की आवाज बंद करते नजर आते हैं। पाले समूह में जगह-जगह जाकर सभाएँ करता है और पाले के इस अंदाज से काफी लोग प्रभावित भी होते हैं जो सवर्ण लोगों और राम भक्तों को नागवार गुजरता है।

पाले एक परिवर्तनकामी पात्र है । पाले शास्त्री जी के यथास्थितिवाद के विरोध में धर्म, अध्यात्म, मस्जिद-मंदिर, समाज, राजनीति, प्रशासन के अनैतिक मिलावट का नैतिक तार्किक रूप प्रस्तुत करता है। पाले हिन्दू धर्म और सवर्णों की सच्चाई को बयान करने के साथ-साथ धर्म में हुई मिलावट की बात करता है, हिन्दू धर्म की व्यवस्था को भलीभांति समझता है। इसीलिए अपने गाँव के भाईयों को अयोध्या जाने से सावधान करता है । वह यह जानता है कि धर्म का व्यवसाय कोई नई बात नहीं है। इसी कारण धर्म के इस व्यवसाय में वह गाँव के अनपढ़ भोले-भाले लोगों को फंसने से बचाने के लिए हर संभव प्रयास करता है।

पाले धर्म में हो रहे मिलावट की बात करते हुए कहता है कि "धरम में मिलावट की कुछ बानगी देखिए.....कहा गया करम प्रधान विश्व रचि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा । चौपाई तो बाद में लिखी गई। बात बहुत पुरानी है और सोलह आना पक्की। .....लेकिन स्वार्थी लोग हराम की खाने वालों ने इसमें एक पूँछ लगा दी, पिछले जनम की। .....अब ये झूठ दगाबाज़ी करके इस जनम में आपकी कमाई खाकर डकारें और आप अगले जनम का इंतजार करें। आप पिछले जनम का 'बही खता' लेकर नहीं पैदा हुए लेकिन वो अपना बाँधकर लाए हैं।.....हमारी आबादी कितनी है ? नब्बे करोड़ । और हमारे देवता की ? बानवे करोड़ । छत्तीस कोटि देवता और छत्तीस कोटि भवानी एक-एक आदमी के कंधे पर एक-एक मुफ्तखोर सवारी गाँठे है। देवता

कौन ? मुफ्तखोर ! जो हल की मुठिया नहीं थामता। कमाते हैं हम। भोग लगाता है वह हम खटने के लिए पैदा हुए हैं और वे भोगने के लिए।"[1]

इस प्रकार पाले धर्म के नाम पर हो रहे व्यवसाय से बखूबी परिचित है। वह बिना लाग लपेट के अपनी बात सीधे आम जन से कहता है।

पाले धर्म की इस राजनीति से अच्छी तरह परिचित है। उसे अपने लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का पूरा ज्ञान है। साथ ही उसमें वह तार्किकता भी है जिसे वह स्वयं भी समझता है और दूसरों को भी समझाता है। इसी आवाज को वह गाँव के लोगों तक पहुँचाने के लिए गीतों का सहारा लेता है। पाले की गीतों में और उसकी तार्किकता में प्रभावात्मकता है, जिससे साम्प्रदायिक और जातिवादी लोग एवं रामवादी पार्टी के लोगों को हमेशा खतरा रहता है। इसी कारण ये लोग हमेशा पाले की सभा को बिगाड़ने की चेष्टा में रहते हैं। अंततः यही साम्प्रदायिक, जातिवादी लोग पाले की हत्या भी करवा देते हैं। साम्प्रदायिक, जातिवादी और रामवादी पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता जब-जब पाले की सभा बिगाड़ने की कोशिश करते हैं तब-तब पाले भी उसका जबाव इस प्रकार देता है –

"बड़के बाबूजी ! जीभ काटने की कौन कहे मौका मिलने पर हमारा मूँड़ तक काटने से पीछे नहीं रहे हैं आप लोग। और आगे भी अगर मौका मिला और ताकत बची रह गई तो काटने से चूकेंगे नहीं। किसकी- किसकी बताएँ ? राहु की बताएँ या कि केतु की ? कि शम्बूक की ? कि कल की ताज़ी घटना एकलव्य की। सिखाया पढ़ाया एक दिन नहीं और दक्षिणा में कटवा लिया

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या–53

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या–55

पूरा अँगूठा यह मूँड़ काटने से कम है ? यही है गुरु का धरम ? नीच-से-नीच महानीच जाति हमारी कहते हो। और नीच से भी नीच, महानीच काम तुम्हारा।"[1]

पाले की तार्किकता में प्रतिशोध की नहीं प्रतिरोध की शक्ति निहित है। पाले अपनी इस तार्किकता से इन सारे प्रतिरोधी शक्तियों पर आघात करता है जो समाज की उन्नति में बाधक हैं। जो धर्म और जाति की राजनीति करते हैं और समाज को पीछे की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। पाले जैसे लोकगायक का सामाजिक आर्थिक बोध ही उसे एक प्रकार से अपने समाज का नायक बनाता है। जो शास्त्री जैसे हिन्दू धर्म के नुमाइंदे, धर्म के ठेकेदारों और नकली रामभक्तों को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सवर्ण समाज के लिए चुनौती प्रस्तुत करता है। पाले अयोध्या के चरित्र का ज्ञान रखता है। उसे पता है कि वहाँ जाने पर धर्म का रुख कैसे होगा। इसी कारण वह गाँव के लोगों को वहाँ जाने से रोकता है। इसीलिए वह कहता है कि –

"हम कथनी करनी का यही अंतर समझाने निकले हैं। राम जब तक जंगल में 'छोटे भाईयों' के बीच रहते हैं, तब तक शबरी के घर खाने और केवट को गले लगाने से परहेज नहीं करते लेकिन जैसे ही अयोध्या पहुँचते हैं, ब्राह्मणवाद के चंगुल में फँसकर मैले हो जाते हैं। गर्भवती पत्नी को घर से निकालने और तपस्वी का सिर काटने लगते हैं। ऐसी खतरनाक जगह है अयोध्या। हम ब्राह्मणवाद के चंगुल में फँस कर मैले हो गए राम को धोकर शुद्ध करने निकले हैं। हमें तो ऐसा भगवान चाहिए जो हमारे थक जाने पर घंटे-दो घंटे के लिए हमारे हल की मुठिया थाम सके। अयोध्या के राजा हमारा खेत जोतने आ सकते हैं ?"[2]

इस प्रकार पाले धार्मिक उन्माद फैला रहे उन झूठे रामभक्तों और धर्म की राजनीति पर हल्लाबोल करता है और इसके प्रति लोगों को सावधान करता है।

---

[2] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-56

इस प्रकार पाले अन्ततः साम्प्रदायिकता, जातिवादिता, अनैतिकता, वर्चस्व और अधर्म के विरूद्ध धर्मनिरपेक्ष, जातिविहीन, समतामूलक, उदार और नैतिक लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए लड़ता है। पाले में प्रतिशोध की नहीं प्रतिरोध की भावना थी इसी कारण वह अपने इन्हीं मूल्यों के साथ आखिर तक चलता है और आखिरकार इसकी भरपाई अपनी जान गवां कर करता है।

साम्प्रदायिक लोगों में अपने धर्म के प्रति साम्प्रदायिक भावना इतनी भर दी गई है कि वे अपने धर्म के अलावा न कुछ सुनते हैं और न ही कुछ देखते हैं। जब भी धर्म या सम्प्रदाय की बात आती है यह साम्प्रदायिक भावना ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर अपना काम उतनी ही आक्रामकता के साथ करती है। इसका एक दृश्य हम तब देखते हैं जब कॉलोनी वालों को यह पता चलता है कि महमूद मुसलमान है तब यही हिन्दू साम्प्रदायिक लोग 'मैं' से कहते हैं कि -"आपको कोई हिन्दू नहीं मिला"[1] और तभी मुस्लिम साम्प्रदायिक लोग 'महमूद' से कहतें हैं कि "क्या दुनिया में सारे मुसलमान मर गए थे जो एक हिन्दू के घर में इतने दिन झाड़ू लगाता रहा।"[2] लोगों में इस प्रकार की साम्प्रदायिकता ज्यादा गतिशील होती है और व्यापक स्तर पर संघर्ष को जन्म देती है।

'त्रिशूल' में शिवमूर्ति जी ने केवल हिन्दू-मुस्लिम के बीच के मतभेदों और झगड़ों को ही नहीं दिखाया है, बल्कि किसी भी बहुसंख्यक राष्ट्र में अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति आवश्यक जिम्मेदारी का एहसास भी कराया है। उपन्यासकार को शुरू से अंत तक इस जिम्मेदारी का वहन करते उपन्यास के अंतर्गत देखा जा सकता है। 'त्रिशूल' से पूर्व जितने भी साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यास लिखे गए उनकी पृष्टभूमि अलग थी। इससे पहले लिखे उपन्यासों का आधार भारत विभाजन से उत्पन्न साम्प्रदायिक झगड़ों पर आधारित था। 'त्रिशूल' की पृष्ठभूमि मंडल कमीशन की नीति के कारण उपजे रामजन्मभूमि विवाद पर केन्द्रित है। वस्तुतः अगर गौर किया जाए तो पहले के उपन्यासों में तथा 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी समस्याओं में मूलभूत अंतर दिखाई पड़ेगा।

---

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल,पृष्ठ संख्या-31

[2] वही, पृष्ठ संख्या-95

भारतीय समाज का यह दुर्भाग्य है या विडम्बना कहें कि एक सम्प्रदाय गाय से तो दूसरा सूअर से अपनी जातियों के अस्तित्व की पहचान करता है। हिन्दू जहाँ गाय से अपनी जाति के अस्तित्व की पहचान करते हैं। वहीं सूअर को मुसलमानों से जोड़ कर देखा जाता है। इक्कीसवीं सदी में अपने को आधुनिक कहने वाले मनुष्यों में सबसे बड़ी हास्यास्पद बात यह है कि 'दोनों सम्प्रदायों' के बीच साम्प्रदायिकता फैलाने का सबसे बड़ा माध्यम यही है। कारण हमारी धार्मिक आचार संहिताओं के अनुसार हिन्दू गाय का मांस नहीं खा सकता और मुस्लिम सूअर का। लेकिन मुसलमान गाय का मांस खाता है जिससे हिन्दुओं को आपत्ति है। ऊपर से तो यह सब छोटे-छोटे कारण नजर आते हैं पर बड़े-बड़े साम्प्रदायिक झगड़ों के मूल में इसी प्रकार की मिथकीय चेतना फैलाने वाले सशक्त माध्यम विद्यमान रहते हैं। शिवमूर्ति जी इन सतही कारणों से परे 'त्रिशूल' में अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी समस्या पर विचार करते हुए उसको पूरे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास की मूल समस्या और उसके स्वरूप पर विचार करते हुए सबसे पहले यह बात सामने आती है कि बहुसंख्यकों के साम्प्रदायिक प्रभुत्व का खतरा किस प्रकार अल्पसंख्यकों पर मंडराता है जिससे कि अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना पैदा होती है। जिसे 'त्रिशूल' के अन्तर्गत आसानी से देखा जा सकता है। शास्त्री जी जैसे पात्रों के माध्यम से उनका पूरा वर्ग चरित्र खुलकर सामने आता है। ऐसे लोगों की बस इतनी सी चाहत होती है कि जिन्होंने इस्लाम धर्म के नाम पर अलग देश बनाया है वह लोग भारत छोड़ दें। यह भ्रांति जान-बूझकर समस्त मुस्लिम समुदाय के खिलाफ फैलाई जाती है कि सभी मुसलमान पाकिस्तान परस्त होते हैं। सच्चाई जबकि इसके विपरीत है। शास्त्री जी और उनके जैसे पात्रों की इन्हीं ख्वाहिशों के कारण महमूद जैसे निरीह की ऐसी दशा होती है। बहुसंख्यक के साम्प्रदायिक प्रभुत्व के कारण ही जब अल्पसंख्यक एकजुट होने लगते हैं तब बहुसंख्यकों को अपना प्रभुत्व नष्ट होता दिखता है। तब

वह अल्पसंख्यकों को दबाने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। अन्ततः प्रतिक्रिया स्वरूप 'काला पहाड़' जैसे चरित्रों का निर्माण होता है। इस पूरी प्रक्रिया में मनुष्यता ही क्षरित होती है।

साम्प्रदायिकता की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह 'दूसरे' से 'अपने' धर्म को अलगाने तक नहीं रूकती बल्कि भीतर के साम्प्रदायिक तत्त्वों को एकत्रित कर उसे और अधिक प्रभावशाली भी बनाती है। यही 'त्रिशूल' के सन्दर्भ में भी हमें देखने को मिलता है। पहले पहल तो महमूद को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरीकों से हिन्दू समाज से अलगाया गया। अंत में महमूद का अपने समुदाय में जाने का फैसला उसके अन्दर के साम्प्रदायिक तत्त्वों के एकत्रीकरण का ही नतीज़ा है। साम्प्रदायिक सोच सर्वप्रथम मनुष्य के तर्क और विवेक को नष्ट कर देती है। किसी भी व्यक्ति के अन्दर साम्प्रदायिक उन्माद के जोर पकड़ने पर वो खुद को दूसरों से और दूसरों को खुद से सबसे पहले धर्म के नाम पर अलग करता है। उपन्यास के अन्तर्गत महमूद की जाति न जानने तक शास्त्री जी के लिए वह चेलवा और पूरे मुहल्ले का चहेता था। पर जैसे ही उसके धर्म का पता सबको चला तभी से वह सबके लिए घृणा का पात्र हो जाता है। इसी संबंध में यशपाल के 'झूठा सच' में आये एक प्रसंग को देखा जा सकता है जब कलकत्ता के दंगों की खबर सुनकर एक गली की स्त्रियाँ गली में फल बेचने वाले मुसलमान फेरीवाले का बहिष्कार कर देती हैं। इसमें कोई तुक नहीं कि सामने वाला केवल धर्म के आधार पर अलग है तो वह हानिकारक है या नुकसानदायक ही हो सकता है। अपने धर्म से परे अन्य धर्म के नाम पर जो अलगाव या दूरी बनायी जाती है और उसके प्रति जो नकारात्मक भाव रखा जाता है। अगर तलाश किया जाए तो ऐसी शिक्षा इस प्रकार के भाव रखने वालों के धर्म ग्रंथों में नहीं मिलेगी और न ही जिस धर्म के प्रति यह भाव रखा जाता है, उस धर्म में ही इस प्रकार की सीख दी जाती है।

'त्रिशूल' में साम्प्रदायिकता का एक अन्य पक्ष वहाँ हमारे सामने आता है जब इस मंदिर-मस्जिद की लड़ाई से दूर के भी सरोकार न रखने वाले लोग इसकी बलि चढ़ जाते हैं। उपन्यास में जहाँ महमूद की दयनीय हालत और दर्जी की मृत्यु हमें देखने को मिलती है वहीं अगर ध्यान दें तो

साम्प्रदायिकता से संबंधित लिखे गए लगभग प्रत्येक उपन्यास में यह देखने को मिलेगा जहाँ 'तमस' में हरनाम और बन्तो की हत्या होती है वहीं 'झूठा सच' में निर्दोष मेलादेई के बेटे रतन द्वारा दौलू मामा की हत्या की घटना को देखा जा सकता है। ये हत्याएँ उन निर्दोष भोले-भले लोगों की होती हैं जिनका इन सबसे दूर-दूर तक कोई नाता नहीं होता है।

भारतीय जीवन में विभिन्न धार्मिक वर्गों में शत्रुता दिखाई देती है। इस शत्रुता या कहें साम्प्रदायिकता के मूल में अपने धर्म के प्रति कट्टरपन का भाव ही विद्यमान रहता है। धर्म जो कि अपने मूल अर्थों में विकासशील जीवन मूल्य का आचरण धारण करने पर जोर देता है अक्सर उसी की रक्षा के लिए हिंसा का मार्ग अपनाया जाता है। इस दृष्टि से साम्प्रदायिकता हमेशा दो तरफा काम करती है। अर्थात् जो साम्प्रदायिकता को नहीं समझता है उसे तो इसका शिकार होना ही होता है। जिसकी परिणति के रूप में हम दंगों और फसादों में मरने तथा उजड़ने वालों की संख्या में देख ही सकते हैं। साथ ही जो इस साम्प्रदायिकता को समझने की कोशिश करता है या समझता है उसे भी किसी अन्य रूप में इसका भुगतान करना पड़ता है। जैसे इस उपन्यास में महमूद जिसे हिन्दू धर्म, रामजन्मभूमि या बाबरी मस्जिद से कोई लेना देना नहीं होता है फिर भी उसके खिलाफ झूठा केस दायर किया जाता है और कई यातनाएं दी जाती हैं। वहीं 'नैरेटर' जो की महमूद को बचाने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ भाग दौड़ करते हैं, उन्हें भी शास्त्री जी जैसे लोगों द्वारा धमकियाँ मिलती हैं और अंततः जब मुस्लिम समुदाय में महमूद को लौटाने जाते हैं वहाँ भी उनके साथ मार-पीट की जाती है।

ठीक ऐसी ही स्थिति हमें दूधनाथ सिंह के उपन्यास 'आख़िरी कलाम'(२००३) में भी देखने को मिल जाती है। इस उपन्यास में प्रो. तत्सत पांडे नामक एक पात्र हैं जिन्हें अयोध्या में किसी विषय पर भाषण देने के लिए बुलाया जाता है। तभी तत्कालीन अयोध्या में तनाव, विद्वेष और आशंका के माहौल की चपेट में प्रो. तत्सत आ जाते हैं जिसमें कारसेवकों के गुस्से का शिकार प्रो. तत्सत हो जाते हैं और उनकी मृत्यु हो जाती है। यह उपन्यास भी अयोध्या में चल रहे

रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद विवाद की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इन सबसे यह तो सिद्ध हो जाता है कि साम्प्रदायिकता न ही सम्प्रदाय को पहचानता है और न ही साम्प्रदायिकों को। साम्प्रदायिकता की आग की लपटों में न केवल वे लोग आते हैं जिनका किसी धर्म विशेष के प्रति साम्प्रदायिक भावना है बल्कि वे सब भी आ जाते हैं जिनका न किसी धर्म से ताल्लुक है और न ही किसी प्रकार का नाता है। पुनः 'त्रिशूल' में देखें तो महमूद को केंद्र में रख कर इसकी पूरी कथा रची गई है। इस दृष्टि से उपन्यास में शुरू से अंत तक महमूद के चरित्र का विश्लेषण करें तो यह महसूस होता है कि स्वतंत्र भारत में किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसका सबसे बड़ा अपराध है, उसका सबसे बड़ा अभिशाप है। चाहे महमूद कितना ही राष्ट्रवादी, समाजवादी क्यों न हो पर शास्त्री जी जैसे लोगों को महमूद जैसे लोगों में समूचा पाकिस्तान नजर आता है। इस अविश्वास के समाजशास्त्र पर विचार करता है।

अगर यशपाल के 'झूठा सच' को 'त्रिशूल' के सामने रख कर देखा जाए तो पाएंगे कि रामजन्मभूमि विवाद से कहीं बड़ी त्रासदी देश विभाजन की है। 'झूठा सच' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ धर्म और सम्प्रदाय के ऊपर मनुष्य को तरजीह दी गई है। जिसे एक प्रसंग में इस प्रकार देख सकते हैं जब लाहौर में दूंगी गली के मुसलमान घर खाली करके भाग रहे थे। तब गली के बंसी, महाजन और काली दूसरे सम्प्रदाय के बूढ़ी ताया और इमामबख्श के परिवार को भागने से रोकते हैं। पर रामजन्मभूमि विवाद को देश विभाजन की त्रासदी के सामने रख कर विचार करें तो वह उसके सामने छोटा जान पड़ता है। लेकिन 'त्रिशूल' में समय और परिस्थिति इतनी जटिल और गंभीर बना दी गई है कि कोई महमूद को रोकता नहीं बल्कि उसे आख़िरी दम तक वहाँ से भगाने की कोशिश की जाती है। इस प्रकार साम्प्रदायिकता के कारण अमानवीयकरण की प्रक्रिया बद से बदतर होती जान पड़ती है।

साम्प्रदायिकता के इस विकराल रूप का इतना भयावह होने का कारण यह भी है कि भारतीय अपने इतिहास के प्रति हमेशा अनभिज्ञ रहे हैं। यही कारण है कि धार्मिक ग्रंथों को

इतिहास की तरह देखा परखा जाता है जिससे साम्प्रदायिकता जैसी समस्या और अधिक जटिल बनती चली जाती है। जब 'त्रिशूल' में शास्त्री जी क़ुरान में से अपनी सुविधानुसार तर्क लाकर कथानायक के सामने प्रस्तुत करते हैं। तब वह भूल जाते हैं कि धार्मिक ग्रंथ मनुष्यों को नैतिक बनाता है, जीवन को सहज और सरल बनाता है। शास्त्री जी जिन तर्कों के आधार पर बात करते हैं, उससे मनुष्यता का क्षरण मात्र ही होता है। हिन्दू, मुस्लिम आदि धर्म के नाम पर मनुष्य को सिर्फ बांटा ही जाता है।

शिवमूर्ति जी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए तथा शास्त्री जी के तर्कों का उत्तर देते हुए धार्मिक ग्रंथों और इतिहास के बीच का फर्क बताते हैं। अन्ततः कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता जैसी समस्या का समाधान धर्म के पास तो कतई नहीं है। हमें अपनी गलतियों को सुधारने के लिए अपने इतिहास को सही रूप में जानना होगा। इन तथ्यों से सहसा भीष्म साहनी के 'तमस' उपन्यास का एक प्रसंग याद आता है जब रिचर्ड लिजा से कहता है –

"यहाँ वे लोग कुछ नहीं जानते, ये वही कुछ जानते हैं जो हम इन्हें बताते हैं।" फिर थोड़ी देर तक मौन रहकर बोला। "ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं हैं, ये केवल उसे जीते- भर हैं।"[1]

इतने वर्षों तक गुलामी की बेड़ी में जकड़े रहने का एक कारण अपने इतिहास के प्रति अनभिज्ञ रहना भी है। साथ ही अंग्रेजों का इतने वर्षों तक भारत पर राज करने के पीछे का कारण उनका हमारे इतिहास में रूची लेना और अध्ययन करना भी है। इसी से संबंधित एक और प्रसंग उपन्यास 'तमस' में देखा जा सकता है जब लिजा रिचर्ड से कहती है –

"तुम तो रिचर्ड यों बात कर रहे हो जैसे यह तुम्हारा अपना देश है। इसी बात पर रिचर्ड लिजा को उत्तर देता है –

"देश अपना नहीं है लिजा, पर इतिहास का विषय तो अपना है।"[1]

[1] भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ संख्या-36

इसी प्रकार 'त्रिशूल' में नैरेटर भी अपने इतिहास के प्रति जानने की रूचि और एक अच्छी समझ रखता है। तभी शास्त्री जी जैसे लोगों के बेबुनियाद तर्कों को अपनी बातों से काटता है। उपन्यास में जहाँ एक मोर्चा नैरेटर संभाले हुए है वहीं दूसरा मोर्चा पाले संभालता है। उपन्यासकार की एक विशेषता यह भी है की वह पाले जैसे पात्र के माध्यम से अपनी बात कुछ अलग और संतुलित आक्रामकता के साथ कहते हैं। पाले अपनी बातों को पुष्ट करने के लिए पौराणिक पात्रों का भी सहारा लेता है। वह अपने तर्कों और प्रभावशाली वक्तव्यों के माध्यम से साम्प्रदायिकता फैलाने वाली ताकतों और उच्च कहे जाने वाले वर्ग की बखिया उधेड़ता है।

'त्रिशूल' की एक विशेषता यह है कि इसमें परिस्थितियों को उनकी अंतिम परिणति तक पूरी तल्खी के साथ आगे बढ़ने दिया गया है। जहाँ और उपन्यासों में कथाकार संतुलन खोकर अपना रोष व्यक्त करने लगते हैं, शिवमूर्ति जी वहाँ भी घटनाओं और परिस्थितियों को स्वयं उनके ही तर्क से संचालित होने देते हैं। वस्तुतः इस प्रक्रिया के दौरान 'त्रिशूल' हो या शिवमूर्ति जी की अन्य कोई रचना उसमें स्पष्टता और एक प्रकार का तीखापन आ जाता है। 'त्रिशूल' का यही तीखापन साम्प्रदायिकता की समस्या पर लिखे गए अन्य उपन्यासों से उसे भिन्न करता है।

साम्प्रदायिक उन्माद से उठे साम्प्रदायिकता में कितनी असहिष्णुता है इसे शिवमूर्ति जी ने अच्छी तरह 'त्रिशूल' के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। शुरू से अंत तक उपन्यासकार की यही चिंता रही है कि यह साम्प्रदायिक भावना जिन लोगों में भरी जा रही है उसे कम कैसे किया जाए। 'त्रिशूल' की पूरी कहानी रामजन्मभूमि विवाद की पृष्ठभूमि में एक छोटे से अंचल पर केन्द्रित है। पर इसकी समस्या तब भी प्रासंगिक थी और आज के सन्दर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है।

[1] भीष्म साहनी, तमस, पृष्ठ संख्या-36

तृतीय अध्याय

'त्रिशूल' की भाषा और शिल्प

किसी भी रचना के निर्माण में रचनाकार द्वारा प्रयोग में लाई गई भाषा और शिल्प की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। रचना में अभिव्यक्त किसी भी प्रकार का भाव, चाहे वह प्रेम हो या घृणा हो भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है। इसलिए हर एक रचनाकार की अपनी एक खास भाषा व शैली होती है। जिसके आलोक में वह अपनी संवेदना को पाठक तक सरलता पूर्वक सम्प्रेषित करता है। हिंदी कथा साहित्य के इतिहास पर अगर गौर करें तो हिंदी कथा साहित्य का वास्तविक आरम्भ हम मुंशी प्रेमचंद से पाते हैं। वैसे तो उनसे पहले भी कई रचनाएँ हिंदी में हुई हैं। लेकिन 'ठेठ हिंदी' की भाषा शैली का जो व्यवस्थित और सरल प्रयोग हमें मुंशी प्रेमचंद के कथा साहित्य में मिलता है उससे पहले और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। जिस प्रकार उनकी भाषा-शैली और शिल्प की एक विशिष्ट पहचान है, वही विकसित हो कर हिंदी कथा साहित्य में अलग-अलग साहित्यकारों में अनेक रूपों में हमें देखने को मिलती है।

किसी अंचल विशेष या किसी निर्दिष्ट विषय पर रचना होने के साथ-साथ एक अलग और खास किस्म की भाषा व शिल्प का प्रयोग अलग-अलग रचनाकारों में देखने को मिलता है। उदाहरण स्वरूप हम प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ 'रेणु' और अज्ञेय आदि साहित्यकारों की रचनाओं पर ध्यान दें तो ये सभी अपने आप में विशिष्ट हैं और सृजनात्मक रचना के संदर्भ में अलग-अलग भाषा और शिल्प का प्रयोग भी करते रहे हैं। प्रेमचंद से अब तक के साहित्यकारों को अगर क्रम में रख कर देखें तो हिंदी भाषी समाज में काफी भाषाई परिवर्तन आया है। इन्हीं परिवर्तनों की एक परिणति के रूप में हम शिवमूर्ति की भाषा-शैली और शिल्प को देख सकते हैं। चूँकि शिवमूर्ति का यह उपन्यास साम्प्रदायिकता की समस्या को उठाता है इस दृष्टि से इसकी भाषा-शैली और शिल्प विधान का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अगर सिर्फ भाषा को साम्प्रदायिकता से जोड़ कर

देखा जाए तो हम स्पष्टतः देख सकते हैं कि समाज के कुछ निहित स्वार्थी तत्त्वों ने भाषाई विवाद को साम्प्रदायिक रंग प्रदान किया था और अब भी करते आ रहे हैं। जैसे कि यह सामाजिक सच है कि भाषा किसी की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है। भाषा का न कोई धर्म होता है और न ही कोई जाति होती है। जब भी कोई किसी भाषा को किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय से जोड़ता है तब वह केवल भाषा की गति को मात्र अवरुद्ध करता है। समाज में शुरू से ही हिंदी को हिन्दू सम्प्रदाय से और उर्दू को मुस्लिम सम्प्रदाय की भाषा मानने की जिद इसी प्रक्रिया का परिणाम है। इस भाषाई फूट को दोनों सम्प्रदायों में प्रथमतः डालने का पूरा श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है। जब फोर्ट विलियम कॉलेज में एक ही भाषा के दो रूप संस्कृतनिष्ठ और दूसरा फारसी मिश्रित भाषा गढ़ने की योजनाबद्ध व्यवस्था की गई। इस प्रकार इन भाषाओं को अपने धार्मिक अस्मिताओं से जोड़ कर देखा जाने लगा। आगे इसी भाषाई दृष्टि से एक भीतरी युद्ध दोनों सम्प्रदायों में देखा जाने लगा। जिसे आज भी अलग-अलग रूप में देखा जा सकता है।

शिवमूर्ति जी गाँव और शहर दोनों से जुड़े हुए रचनाकार हैं। यह उनके भीतर की भाषाई संवेदना ही है जो उन्हें हमेशा हिंदी भाषी जन सामान्य से जोड़ती है। इनकी भाषा जीवन से जुड़ी हुई भाषा है। 'त्रिशूल' की कहानी पूर्वी उत्तरप्रदेश के एक अंचल विशेष पर आधारित है। संभवतः इसी कारण इनके इस उपन्यास की भाषा संवेदना में हम पूरे पूर्वी उत्तरप्रदेश की आम जनता की भाषाई संवेदना को देख पाते हैं। उपन्यास में चित्रित आम जनता हिंदी भाषी समाज से संबंधित है। भाषा-शैली और शिल्प की दृष्टि से इस उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक के सामने सम्प्रेषण की समस्या नहीं आती है। उपन्यासकार की उपयुक्त भाषिक क्षमता ही उपन्यास को और अधिक संप्रेषणीय बनाती है जिससे उपन्यास में चित्रित समस्याओं, मुद्दों और उसकी मूल संवेदना की अभिव्यक्ति आसानी से हो जाती है। इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता और जातिवाद दोनों ही समस्याओं को उठाया गया है। साथ ही इन दोनों के पीछे काम कर रही राजनीति को उपन्यासकार ने भलीभांति चित्रित किया है।

'त्रिशूल' की भाषा और शिल्प पर ध्यान दें तो यह अपने आप में विशिष्ट है । इसमें अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप को शिवमूर्ति जी ने इस कौशल के साथ चित्रित किया है कि सरल वाक्यों और चयनित सटीक शब्दों से पूरी कहानी आसानी से पाठकों को समझ में आ जाती है। इसके साथ ही पाठक सहजता से पूरी पृष्ठभूमि और इसके इर्दगिर्द के रचना संसार से अवगत हो जाता है। उपन्यासकार ने 'त्रिशूल' में जिस भाषा-शैली का प्रयोग किया है, उस प्रयुक्त भाषा-शैली के अंतर्गत किन्हीं शब्दों का हेरफेर किया जाए या उसकी जगह किसी पर्यायवाची शब्दों को लाया जाए तो पूरा वाक्य अपनी वह अर्थवत्ता खो बैठेगा। इसे उपन्यास में आए इस अंश के माध्यम से समझा जा सकता है। जब मिसराईन को महमूद के मुसलमान होने का पता चलता है और वह कहती है "स्वभाव से क्या होता है जी ? स्वभाव अच्छा है तो चौके में घुस जाएगा ? 'मलिच्छ' होकर बर्तन-भाँड़ा छुएगा ? सब कुछ 'भरभड़' करके रख दिया।"[1]

यहाँ इस वाक्य में से अगर 'मलिच्छ' या 'भरभड़' शब्द को निकाल दिया जाए या कोई पर्यायवाची शब्दों को इनकी जगह लाया भी जाए तो यह उस तरह व्यंजित नहीं होगा जिस तरह इन शब्दों के प्रयोग से हो रहा है।

एक अन्य प्रसंग से भी इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है जब मास्टराईन कहती है कि 'रातभर में सब 'बकुर' देगा'। 'बकुर' शब्द का कोई भी पर्यायवाची शब्द इसका स्थान नहीं ले सकता। 'बकुर' शब्द जो भाव व्यंजित करता है शायद अन्य कोई शब्द वह न कर सकेगा। वैसे तो 'बकुर' गँवई भाषा में प्रयुक्त शब्द है पर अहिंदी भाषी क्षेत्र के पाठकों द्वारा पढ़े जाने पर भी इस शब्द का अर्थ स्वतः खुल जाता है। कारण यह कि शिवमूर्ति जी की भाषा-शैली में संवाद की सटीकता है जो 'त्रिशूल' में इस तरह के शब्दों का प्रयोग होने पर भी सम्प्रेषण की समस्या नहीं उठने देती।

[1]शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-29

'त्रिशूल' की भाषा बहुत ही सहज और सरल है। इसको समझने के लिए किसी शब्दकोश की आवश्यकता नहीं है। यह बाबरी-रामजन्मभूमि विवाद की पृष्ठभूमि पर तो लिखा गया है पर मस्जिद विध्वंस की घटना का वर्णन पूरे उपन्यास में कहीं नहीं आया है। फिर भी तत्कालीन समय के साम्प्रदायिक तनाव ग्रस्त माहौल का पता उपन्यास में आए बहुत से प्रसंगों से मिल जाता है। उनमें से एक प्रसंग को हम कुछ इस प्रकार देख सकते हैं-

"इधर जबसे मंदिर-मस्जिद मुद्दा गहराया है, आगंतुकों की बातचीत का केंद्र बिंदु घूम फिर कर वही मुद्दा बन जाता है। फिर इसके पक्ष और विपक्ष में गरमा-गरम बहस। ज्यादातर वक्ता उत्तेजित हो जाते हैं। मुसलमानों को भला-बुरा कहने पर उतर आते हैं।"[1]

यह 'त्रिशूल' की सहज और सरल भाषा का ही नतीजा है कि इस छोटे से प्रसंग के माध्यम से ही तत्कालीन परिस्थिति का सहज ज्ञान हो जाता है। भाषा के प्रसंगगर्भत्व का उदहारण है यह।

'त्रिशूल' की भाषा और शिल्प पर चर्चा करते हुए उन तमाम प्रसंगों की ओर ध्यान जाता है जहाँ साम्प्रदायिकता अपना मुँह बाएँ खड़ी है। साम्प्रदायिकता का प्रश्न उठते ही धर्म, राजनीति, साम्प्रदायिक आदि का आना स्वभाविक है। धर्म, जाति, राजनीति आदि के खिलाफ भाषा का स्वरूप 'त्रिशूल' में थोड़ा तीखा रहा है। जैसे की ऊपर कहा जा चुका है कि किसी भाव की अभिव्यक्ति के लिए भाषा की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में उपन्यास में कई ऐसे प्रसंग आए हैं जहाँ शास्त्री जी और नैरेटर के बीच धर्म को लेकर बहस हुई है। शास्त्री जी जहाँ हिंदू धर्म के प्रति आस्थावान हैं वहीं नैरेटर हिंदू होने पर भी नास्तिक किस्म के और तार्किक हैं। धर्म के नाम पर हो रही बहस में जहाँ शास्त्री अपने हिन्दू धर्म के प्रति आस्था में ओत-प्रोत बातों को सामने रखते हैं वहीं नैरेटर अपनी तार्किकता के बल पर शास्त्री जी की बातों को काटते हैं। उपन्यास में आए एक प्रसंग में शास्त्री जी द्वारा नैरेटर से 'आप आस्तिक हैं या नास्तिक' यह प्रश्न पूछे जाने पर नैरेटर का उत्तर कुछ इस प्रकार होता है-

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-24

"संक्षेप में इतना ही कि मेरी कल्पना का ईश्वर केवल हिंदुओं का ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्मावलम्बियों का है विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था और इनके न रहने पर भी रहेगा। विभिन्न धार्मिक ब्रांड के ईश्वर स्वयंभू नहीं। उन्हें हमने अपनी जरूरत, अपने स्वार्थ के अनुसार गढ़ा है। इसलिए एस्किमों का ईश्वर विषुवत रेखावालों के ईश्वर से भिन्न है। काले का ईश्वर गोरे से भिन्न होगा। जलचरों का नभचरों से भिन्न होगा। अन्य धर्म ने ईश्वर की कल्पना अपने समाज को नियंत्रित करने, उसकी बेहतरी के लिए की जबकी हमने इसका उपयोग किया अपने ही भाइयों का शोषण करने और हराम की कमाई खाने के लिए। यही नहीं अपने शोषण से अपने भगवान तक को नहीं बख्शा। उन्हें कोर्ट-कचहरी तक घसीटा है। विभिन्न न्यायालयों में श्री रामचंद्र वल्द दशरथ सिंह बनाम स्टेट या श्री हनुमान जी वल्द नामालूम नगर महापालिका के मुकदमे चलते हैं। वे 'इन्क्रोचमेंट' के जुर्म में 'वान्टेड' होते हैं।"[1]

उपर्युक्त इस उत्तर में 'त्रिशूल' की भाषा का स्वरूप व्यंग्यात्मक है। इसमें नैरेटर ने धर्म की संकुचित परिभाषा का अर्थ विस्तार किया है। इसके साथ-साथ हिंदू धर्मांध और मुफ्तखोरों को उनके असली रूप में प्रस्तुत किया है। इस व्यंग्यात्मक भाषा शैली के माध्यम से अपने स्वार्थ के लिए गढ़े गए हिंदू धर्म के मिथकों और उनकी करतूतों का पर्दाफाश किया है। इस व्यंग्यात्मक शैली का एक और स्वरूप हमें उपन्यास में आए एक और जगह भी देखने को मिलता है। 'त्रिशूल' की प्रयुक्त व्यंग्यात्मक भाषा-शैली में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक भावना का एक स्वरूप हमें मिसराईन के कथन में देखने को मिलता है। मिसराईन एक ऐसी पात्र है जो साम्प्रदायिक और जातिवाद की भावना से ग्रसीत है। यह महमूद से मछली मँगा-मँगा कर तो खाती है, पर सबके सामने यह घोषित करती है कि वह 'सरजूपारी' है। जब मिसराईन को यह पता चलता है कि महमूद मुसलमान है तब उसकी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त होती है-

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल , पृष्ठ संख्या-10

"आप क्यों मानेगी ? आप लोग तो खुद ही आधे मुसलमान होते हैं। लेकिन हमारा खानदान 'सरजूपारी' है.....और अयोध्या में रामलला की जन्मभूमि को 'भरिष्ठ' करने वाले कौन है ? इस तरफ चौतरफा आग लगाने वाले कौन है ? इसी के बाप-दादे तो.....जाओ बहिन ! खड़ी होते हुए मिसराईन कहती है, "आपने धरम 'भरिष्ठ' करवाकर छोडा। हमें भी अपनी बराबरी पर उतारकर छोड़ा।"[1]

यहाँ उपन्यासकार ने मिसराईन द्वारा खुद को 'सरजूपारी' बताने की बात में व्यंग्यात्मक दृष्टि अपनाई है। 'सरजूपारी' कहने का तात्पर्य उन विशुद्ध ब्राह्मणों को समझा जाता है जो शाकाहारी होते हैं। सच्चे ब्राह्मण धर्म का निर्वाह करते हैं। लेकिन इन साम्प्रदायिक जातिवादी मनोभाव रखने वाले पात्रों के लिए तीखा और व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग 'त्रिशूल' में हुआ है। मिसराईन का महमूद के बारे में ऐसी प्रतिक्रिया देने पर नैरेटर की पत्नी द्वारा सटीक उत्तर का देना उपन्यास की व्यंग्यात्मक भाषा का विशिष्टतम परिचायक बनता है। नैरेटर की पत्नी मिसराईन को उत्तर देने के क्रम में कहती है-

"जब आपके मिसराजी उसी 'मलिच्छ' से चोरी-चोरी क्लब में दारू मँगाकर पीते हैं तब आपका धरम भरिष्ठ नहीं होता ? जब उसी मलिच्छ से आप चोरी-चोरी होटल से मछली मँगाकर चाभती हैं तब आपका धरम भरिष्ठ नहीं होता ?"[2]

उपन्यास में शिवमूर्ति जी ने साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी समस्या को अपनी बेहतरीन व्यंग्यात्मक शैली में एक अन्य रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में रामजन्मभूमि आंदोलन के दौरान चल रहे कारसेवकों तथा रामभक्तों आदि का अस्थि कलश बाँटने के ढोंग का चित्रण किया है। साम्प्रदायिकों ने हिन्दुओं में साम्प्रदायिक उन्माद बढ़ाने के लिए 'अस्थि कलश कार्यक्रम' का आयोजन उपन्यास के अंतर्गत किया है। इस 'अस्थि कलश कार्यक्रम' के

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-29

[2] वही, पृष्ठ संख्या-29

आयोजन से तात्पर्य है- अयोध्या गोलीकांड में मरे रामभक्तों का अस्थि कलश उनके परिवारजनों के यहाँ पहुँचने के कार्य से है। इसे उपन्यासकार ने रामभरोसे और घसीटे नामक दो पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अयोध्या गए रामभरोसे और घसीटे के "लौटने में देरी के चलते घर के लोग चिंतित होते हैं- कहीं अयोध्या गोलीकांड में मरे रामभक्तों में उनके रामभरोसे और घसीटे भी तो नहीं ? पूछताछ करते हैं। पूछताछ ऊपर 'पास आन' की जाती है और अगले दिन उनका अस्थि कलश उनके गाँव में। उधर रामभरोसे और घसीटे के पास का पैसा खत्म हो जाने, सवारी न मिल पाने या बुखार आ जाने के चलते पंद्रह दिन विलम्ब से अपने गाँव पहुँचते हैं तो उनका सौभाग्य इंतजार कर रहा होता है, उनके अपने अस्थि कलश पर उनके अपने ही करकमलों द्वारा श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का।"[1]

इसी व्यंग्यात्मक लहजे में उपन्यासकार तत्कालीन लोगों की धार्मिक साम्प्रदायिक भावना का परिचय इन पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इस व्यंग्यात्मक भाषा का एक और परिचय हमें उपन्यास में आए एक और प्रसंग में मिलता है -

"अस्थि कलश का रथ अभी घंटा-भर पहले इसी चौराहे से होता हुआ शहर से बाहर गया है। इसके तुरंत बाद किसी खिसकढ़े आदमी की पिटाई हुई है। उसने किसी रामभक्त से पूछ लिया था- सुनते हैं आपकी पार्टी सत्ता में आई तो हनुमान चालीसा को राष्ट्रगान घोषित कर देगी।"[2]

उपर्युक्त कथन में हनुमान चालीसा को राष्ट्रगान घोषित करने वाली बात वैसे तो हास्यास्पद है। लेकिन हनुमान चालीसा जो एक धार्मिक सम्प्रदाय से जुड़ा हुआ है उसे राष्ट्रगान बनाने की बात उपन्यासकार ने इस पात्र द्वारा कहलवाकर एक बड़े खतरे की ओर इशारा भी किया है। इस इशारे से तात्पर्य उन सभी धर्मों सम्प्रदायों पर हिन्दू धर्म का आधिपत्य हो जाना या भारत के इन सभी धर्मों को देश से बेदखल करने से भी लिया जा सकता है।

---

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-37

[2] वही, पृष्ठ-38

'त्रिशूल' की मूल समस्या साम्प्रदायिकता की समस्या है। साम्प्रदायिकता की समस्या से संबंधित और भी बहुत सारे उपन्यास लिखे गए हैं। 'त्रिशूल' से पूर्व लगभग जितने भी साम्प्रदायिकता से संबंधित उपन्यास लिखे गए हैं उनकी पृष्ठभूमि में देश विभाजन की त्रासदी रही है। चूँकि 'त्रिशूल' की पृष्ठभूमि उन उपन्यासों से अलग मंदिर-मस्जिद विवाद पर केंद्रित है। इस कारण साम्प्रदायिकता से संबंधित लिखे उपन्यासों से 'त्रिशूल' की भाषा-शैली और शिल्प का अंतर स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'त्रिशूल' से पूर्व इस समस्या से संबंधित लिखे गए प्रमुख उपन्यासों में 'झूठा सच', 'तमस', 'शहर में कर्फ्यू', 'आधागाँव' आदि को देखा जा सकता है। इन उपन्यासों के सामने अगर 'त्रिशूल' को रखकर देखा जाए तो उपर्युक्त प्रमुख उपन्यासों में प्रयुक्त साम्प्रदायिकता के खिलाफ 'भाषा' का रूप 'त्रिशूल' में प्रयुक्त भाषा से ज्यादा आक्रामक है। 'त्रिशूल' की भाषा इन उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा से कम आक्रामक होने पर भी उतना ही गंभीर और गहरा प्रभाव पाठकों पर छोड़ती है। 'त्रिशूल' में भाषा का क्रूर रूप हमें देखने को मिलता है। किसी साम्प्रदायिक माहौल में अल्पसंख्यकों के साथ किस प्रकार असभ्य भाषा या कहें भाषा का क्रूरतम रूप का प्रयोग होता है और उन पर अत्याचार किए जाते है उसे 'त्रिशूल' के इस प्रसंग में देखा जा सकता है- बाजार से लौट रहे महमूद को कुछ लड़के पकड़ लेते हैं और-

"एक उसके बाल पकड़कर हिलाता है और दूसरा दो हाथ लम्बा 'त्रिशूल' उसके गले पर अड़कर पान से लाल मुँह टेढ़ा करके कहता है, "बोल साले जै सिरी राम" भीड़ जुटने लगती है। बोलता है कि यही 'त्रिशूल' तेरी....."

भय से महमूद की आँखे चित्त कौड़ियों की तरह फैल जाती है।

"पैट खोल साले की।"

"बोल राम हमारे बाप हैं।"

"अल्ला अकबर पाप है।"

"नहीं बोलेगा ! तेरी माँ की..... ।"

धम धम धम । लात मुक्के बरसने लगते हैं । वह नीचे गिर जाता है ।"[1]

इससे मिलता-जुलता एक प्रसंग हमें 'शहर में कर्फ्यू' उपन्यास में भी देखने को मिलता है । जब एक बूढ़ा शहर में कर्फ्यू लगे होने पर कुछ कारणवश घर से बाहर निकलता है तब एक पुलिस कर्मी द्वारा उसके साथ इस तरह का बर्ताव होता है ।

"मोदर चो.....इस कर्फ्यू में निकलने को डॉक्टर बता रहे । बूढ़ा चुप रहा । कुछ बोलने को उसके होठ काँपे लेकिन हलक से गों गों के अलावा कोई ध्वनि नहीं निकाली । बोल साले । कोई बम-फम तो नहीं छिपाए है । मुसल्ले का कोई भरोसा नहीं ।"[2]

उपन्यास में आए इस प्रकार के प्रसंगों में भाषा का क्रूर रूप हमें देखने को मिलता है । आज़ाद भारत में इतने वर्षों बाद भी अल्पसंख्यकों के साथ ऐसा व्यवहार होता है । उनके लिए इस प्रकार की भाषा का इस्तेमाल किया जाता है । जैसे वे मनुष्य है ही नहीं मानों पशु हों । इसमें धर्म के प्रति कट्टरता का इतना क्रूर रूप महमूद को मारने पीटने वालों की भाषा में हो या बूढ़े मुसलमान के साथ पुलिसकर्मी के व्यवहार में हो, हमें स्पष्टतः देखने को मिल जाता है ।

'त्रिशूल' में आए कई और ऐसे प्रसंग हैं जिसमें प्रयुक्त भाषा के माध्यम से 'ये' और 'वे' अर्थात् हिंदू और मुस्लिम के बीच की खाई को साफ-साफ चिह्नित किया जा सकता है । उपन्यास के अंत में जब नैरेटर महमूद को सही सलामत उनके लोगों के पास अर्थात् मुस्लिम समुदाय में पहुँचाने जाता है तब वहाँ भी उनके साथ मार-पीट की जाती है पर साथ में महमूद को यह कहना

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-38

[2] विभूतिनारायण राय, शहर में कर्फ्यू, पृष्ठ संख्या-79

कि "इससे पूछो, क्या दुनिया के सारे मुसलमान मर गए थे जो एक हिंदू के घर इतने दिन झाड़ू लगाता रहा ?"[1] हिंदू मुस्लिम के संबंधों के बीच खाई को भी दर्शाता है।

'त्रिशूल' की भाषा की अगली विशेषता हमें यह दिखाई देती है कि उपन्यास में आए नारेबाजियों की भाषा में साम्प्रदायिक उन्माद का स्वरूप कितना भयावह है। साम्प्रदायिक उन्माद से भरे भाषणों और नारेबाजियों की भाषा पर अगर गौर करें तो देश विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यासों में आए नारेबाजियों और 'त्रिशूल' की नारेबाजियों की भाषा से भिन्न है। अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यासों की नारेबाजियों और भाषणों की भाषा में जहाँ माँग है। माँग है, अपने देश की अपने वतन की। वहीं 'त्रिशूल' उन नारेबाजियों से एक कदम आगे बढ़ता है। 'त्रिशूल' में आए भाषण और नारे उत्तेजित करने वाले, माँग से बढ़ कर छीनने की ललकार पैदा करने वाले हैं। 'त्रिशूल' की नारेबाजियों की भाषा में ऐसी उत्तेजना और ललकार है जो 'खून के बदले खून की माँग' करती है। प्रस्तुत कथन को भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' के नारों और 'त्रिशूल' में चित्रित नारेबाजियों की एक छोटी सी तुलना से समझा जा सकता है। 'तमस' जो कि देश विभाजन की त्रासदी के पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। उसमें आए नारेबाजियों को इस प्रकार देख सकते हैं -

उम्र रसीदा लोग भी थे और जवान भी। उसके पास से गुजरने पर एक आदमी ने उँची आवाज में नारा लगाया।

"कौमी नारा।"

"बंदे मातरम्।"

"बोलो भारत माता की जय!"

"महात्मा गांधी की जय!"

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-95

इसके बाद सहसा केवल क्षण भर की चुप्पी के बाद कुछ ही दूर पर जहाँ एक और गली उस गली को कट गयी थी, एक नारा और उठा।

"पाकिस्तान-जिंदाबाद!"

"पाकिस्तान-जिंदाबाद!"

"कायदे आजम-जिंदाबाद"

"कायदे आजम-जिंदाबाद"

वहीं उपन्यास में एक और जगह कुछ इस प्रकार नारा लगाया जाता है।

"नारा-ए-तकवीर! और जबाव आया।"

"अल्ला-हो-अकबर!"

"नारा-ए-तकबीर!"

"अल्ला-हो-अकबर!"[1]

वहीं 'त्रिशूल' की नारेबाजी इस प्रकार की है -

"दोपहर एक बजे से शास्त्री जी के दरवाजे पर भीड़ इकट्ठी होने लगती है। दो ढ़ाई बजे से शंख घड़ियाल बजने लगते हैं। नारे लगने लगते हैं- "हर हर महादेव!

जिस हिंदू का खून न खौले

खून नहीं वह पानी है।

.....

[1] तमस, भीष्म साहनी, पृष्ट संख्या-30-31

खून की नदी बहानी है।"[1]

उपर्युक्त दोनों उपन्यासों के बीच के नारेबाजियों की भाषाई तेवर पर दृष्टि डाली जाए तो पाएगें कि 'तमस' की नारेबाजियों में जहाँ एकता और बलिदान की भावना उग्र रूप में मिलती है। वहीं 'त्रिशूल' का भाषाई तेवर 'कौमी जिंदाबाद', मुर्दाबाद' से आगे बढकर 'खून की नदी बहानी है' तक पहुँच जाती है। 'त्रिशूल' के नारों में 'न खौलने वाले खून को पानी' सिद्ध कर दिया जाता है। अंततः हम देख सकते हैं कि 'तमस' की नारेबाजी की भाषा से अधिक उग्र रूप में हमें 'त्रिशूल' की भाषाई उत्तेजना में देखने को मिलती है। इस प्रकार दोनों उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर ध्यान दें तो यह पता चलता है कि कोई प्रसंग बड़ा या छोटा नहीं होता उसके 'भाव' बड़े-छोटे होते हैं। 'तमस' की समस्या क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से 'त्रिशूल' से बड़ी है। लेकिन इसमें जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग लेखक ने प्रसंगों के अंतर्गत किया है वह भी उतना ही गहरा प्रभाव छोड़ती है। जितना कि 'तमस' और अन्य उपन्यासों की नारेबाजियों की भाषा में है।

साम्प्रदायिकता फैलाने में 'भाषा' की कैसी भूमिका रहती है, इसे 'त्रिशूल' के माध्यम से भलीभांति समझा जा सकता है। यह सर्वविदित है कि साम्प्रदायिकता हमेशा झूठी अफवाहों और झूठे तर्कों पर फलती-फूलती है। उपन्यास में जब रामभक्तों द्वारा झूठी अफवाहें फैलाई जाती है कि मुसलमानों ने किस प्रकार हिंदूओं को मारा इसका वर्णन किया जाता है। साथ ही उकसाया जाता है कि 'खून का बदला खून' से लेना है। रामजन्मभूमि आंदोलन के दौरान आम जनता को अयोध्या जाने के लिए उकसाया जाता है। जो लोग अयोध्या नहीं भी गये होते हैं वे भी अपनी कल्पना शक्ति के धनी वाक्पटुता से ऐसे-ऐसे चित्र खींचते हैं कि सुनने वालों की मुट्ठियाँ कस जाती हैं और उनमें भी धर्म रक्षा का भाव उमड़ आता है। जिसे निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है-

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-42

"अयोध्या से लौटनेवाले रामभक्त अयोध्या की घटनाओं का बिना आँखो-देखा हाल सुना रहे हैं और चाय, पान की दुकानों पर इकट्ठा होकर लोग श्रद्धाभाव से उसको सुन रहे हैं। उन्हें चाय पान करा रहे हैं। इन भक्तों के अनुसार भारत-पाक विभाजन के समय भी ऐसी भयानक मार-काट क्या हुई रही होगी- जैसे अयोध्या से लौटने के रास्तों में होती हुई वे देखते आ रहे हैं। रास्तों में पड़नेवाले मन्दिर टूट रहे हैं। मूर्तियाँ को अपवित्र की जा रही है। मुसलमानों की दंगाई भीड़ रात में इन्हें तोड़ते हुए आगे बढ़ रही है। दिन में मुसलमान गाँवों में शरण ले रहे हैं। दो-ही-चार दिन में यहाँ तक पहुँच रहे हैं। तैमूरी सेना।"[1]

इस प्रकार साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में 'भाषा' की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। यही कल्पना शक्ति के धनी और वाक्पटुता में उत्तीर्ण लोगों की झूठी अफवाहों में उत्तेजित कर देनी वाली भाषा के द्वारा साम्प्रदायिक कारकों को बढ़ावा दिया जाता है। वह अपने उत्तेजित भाषणों के माध्यम से रोमांचकारी और खून खौला देने वाला चित्र 'त्रिशूल' में प्रस्तुत करते हैं। 'त्रिशूल' में जहाँ एक तरफ यह काम शास्त्री जी और रामवादी पार्टी के लोगों द्वारा किया जाता है वहीं यह कार्य मुस्लिम सम्प्रदाय में मौलवी और काला पहाड़ जैसे पात्रों द्वारा प्रचारित और प्रसारित होता है।

अफवाहों की भाषा में इतनी भयानक वर्णन शक्ति होती है कि सुनने वाला भी मानों उन न देखे हुए समय और घटनाओं को भी स्वयं देख रहा हो जान पड़ता है। 'त्रिशूल' की अफवाहों की भाषा में भी कुछ इसी प्रकार के गुण देखने को मिलते हैं। जब चाय की दुकानों और चौराहों पर लोग खड़े होकर दंगों का वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं- "उनके अनुसार पता नहीं कितने रामभक्तों को तो मुख्यमंत्री ने खुद अपने सामने ट्रक में 'लोड़' करवाया और सरजू के पुल पर ले जाकर बीच

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-25

धार में फेंकवा दिया। उनके अंगोछे-झोले पूल की रेलिंग में फंसे लटके हैं। सरजू के किनारे बीसों किलोमीटर तक लाशें ही लाशें मिल रही है, रोज !"[1]

'त्रिशूल' हो या 'तर्पण' शिवमूर्ति जी अपने उपन्यासों में पुलिस की ज्यादत्तियों को अपनी सधी भाषा-शैली के जरिए इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि उसका विद्रूप चेहरा हमारे सामने अपने आप खिंच जाता है। उपन्यासों के संदर्भ में अगर देखें तो साम्प्रदायिकता की समस्याओं से संबंधित उपन्यासों में पुलिस रक्षक की जगह भक्षक के रूप में हमारे सामने आती है। किसी साम्प्रदायिक तनाव ग्रस्त माहौल की कल्पना करने पर आदमी दहशत में तो आ ही जाता है, उस पर पुलिस की बर्बरता इसे और भी ज्यादा भयानक बना देती है। किसी भी साम्प्रदायिक माहौल में पुलिस की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। 'त्रिशूल' में भी पुलिसवालों की संवेदनहीनता का वर्णन करने में उपन्यासकार अपनी भाषा में एक तेवर के साथ दिखते हैं। पुलिस के इन दुर्व्यवहारों को आम जनता या कहें साम्प्रदायिक माहौल में अल्पसंख्यक किस प्रकार लाचार होकर भोगते हैं। इसका मार्मिक चित्रण 'त्रिशूल' में हमें देखने को मिलता है। उपन्यास के एक अंश में हम देखते हैं-

"पत्नी बताती है, पुलिस आई थी। महमूद को उसकी कोठरी से पकड़कर ले गई।"

लड़का बताता है "महमूद भाई का हाथ पीछे बांध दिया था और सड़क पर लाठियों से पीट रहे थे।"

लड़की बोलती है, "वह चीख रहा था, लोट लोट जाता था।"

पत्नी बोलती है, "गेट के बाहर लेकर चले गए। सड़क पर पीटने लगे वह चिल्लाया, तब हमें पता चला। भागने-छिपाने का मौका ही नहीं मिला। सारा मुहल्ला इकट्ठा था लेकिन कोई कुछ नहीं बोला। सब चुप-चाप तमाशा देख रहे थे।"

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-25

लड़की जोड़ती है, "बल्कि खुश हो रहे थे। मास्टराईन कह रही थी कि रातभर में सब 'बकुर' देगा।"[1]

उपर्युक्त प्रसंग में पुलिस को रक्षक कहें या भक्षक यह तय कर पाना मुश्किल हो जाता है। जब महमूद बड़ी बेरहमी से जेल के अंदर मारा-पीटा जाता है, "सारे कपड़े उतरवाकर पत्थर की मोटी शिला पर औंधे मुँह लेटाया जाता है। हाथ-पैर चारो तरफ खूंटे से बाँध देते हैं। ठंड से खड़े रोयें। ऊपर से एक बाल्टी पानी। पानी में भिगोया गया कैनवास का ग्यारह नंबर का जूता चूतड पर पड़ता है तो चिनगारी निकलती है। चमड़ी से चिपक जाता है। खींचने पर चर्र-चर्र करता है। साथ-साथ चमड़ी भी उधेड़ लाता है। यही आवाज निकलती है कि या अल्लाह ! इससे अच्छा है मौत दे दे !"[2]

'त्रिशूल' की भाषा-शैली और शिल्प विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शिवमूर्ति जी अपनी सधी भाषा-शैली और शिल्प विधान के जरिए पूरे वातावरण को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं। यहाँ तक कि उस वातावरण और उसमें घटित घटनाओं को भी हम महसूस करने लगते हैं। 'त्रिशूल' की भाषा और शिल्प विधान को दृष्टि में रखकर अगर 'त्रिशूल' में चित्रित साम्प्रदायिक तनाव ग्रस्त माहौल को देखें तो पाएंगे कि उपन्यासकार ने सरल और सहज भाषा-शैली में पूरे वातावरण का चित्रण कम और सटीक शब्दों में कर दिया है। जिसे हम उपन्यास के अंतर्गत शहर में कर्फ्यू लगने से पहले चित्रित वातावरण में देख सकते हैं।

"जहाँ अन्य शहरों में कर्फ्यू लगने के हालात पैदा होते जा रहे हैं, यहाँ अभी तक शांति थी। आज वातावरण में तनाव, आशंका, और आक्रोश की गंध फैल रही है। नदी के उस पार मुस्लिम-

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-66

[2] वही, पृष्ठ संख्या-99

बहुल इलाकों में अघोषित कर्फ्यू की स्थिति पैदा हो गई है। दुकानें बहुत कम खुली हैं। सड़कों पर सन्नाटा है।"[1]

उपर्युक्त प्रसंग में आए 'तनाव' शब्द से हिंदू मुस्लिम संबंधों के बीच की दूरी, 'आशंका' शब्द से एक दूसरे पर से उठ गए विश्वास की बात कही गयी है। साथ ही वातावरण में आक्रोश की गंध फैलना अर्थात् किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है और मुसलमानों द्वारा हमले की आशंका की दहशत से भर जाना जैसी पूरी स्थिति का चित्रण करता है। साम्प्रदायिक वातावरण में कर्फ्यू लगने पर किस प्रकार आम आदमी का जीवन बसर नरकीय हो जाता है इसका चित्रण 'त्रिशूल' की भाषा-शैली और शिल्प विधान के माध्यम से आसानी से पता चल जाता है। इसी से मिलता-जुलता एक प्रसंग हमें विभूतिनारायण राय जी के उपन्यास 'शहर में कर्फ्यू' में भी देखने को मिलता है। यथा-

"बाहर सड़क पर सिर्फ खौफ था, पुलिस थी.....कुल मिलाकर डेढ़ घंटे से जो कुछ हुआ उसमें छह लोग मारे गए, तीस-चालीस लोग जख्मी हुए और लगभग तीन सौ लोग गिरफ्तार किए गए। ऐसा लगता था जैसे- चील की तरह आसमान में मँडराने वाले एक तूफान ने एकाएक नीचे झपट्टा मारकर शहर को अपनी नुकिले पँजों में दबोचकर नोच डाला हो और फिर उसे पँजों में फँसाकर काफी ऊपर उड़ गया हो और ऊपर से जाकर एकदम से नीचे पटक दिया हो।"[2]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि 'त्रिशूल' की ही तरह अन्य साम्प्रदायिकता की समस्या से संबंधित उपन्यासों में भी किस प्रकार साम्प्रदायिकता से भरे वातावरण का चित्रण हुआ है। वातावरण के मुताबिक सही शब्दों का चुनाव और एक खास भाषा-शैली के माध्यम से वातावरण और परिस्थिति का पूरा चित्र इस प्रकार खींच दिया जाता है कि पूरी घटना मानों आँखों के सामने ही घटित हो रही जान पड़ती है। बाबरी मस्जिद विध्वंस का कोई प्रसंग उपन्यास में नहीं

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-37

[2] विभूतिनारायण राय, शहर में कर्फ्यू, पृष्ठ संख्या-14

आया है। कारण मस्जिद बाद में गिराया गया और उपन्यास पहले ही लिखा जा चुका था। फिर भी उपन्यास में जिस तरह की आशंका जताई जा रही थी वह बाद में घटित होती है। घटना चूँकि बाद में घटित होती है और उपन्यास पहले ही लिखा जा चुका था, इस कारण इस उपन्यास की भाषा में 'शहर में कर्फ्यू' हो या 'तमस' जैसे उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा की तरह वह तेवर नहीं आ पाया है।

'त्रिशूल' की भाषा-शैली और शिल्प विधान की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह साम्प्रदायिकता फैलाने वाले उन सभी प्राथमिक कारणों की जाँच पड़ताल करती है और सीधे-सीधे सरल वाक्यों में अभिव्यक्त कर देती है। जिसे उपन्यास के एक अंश में देखा जा सकता है-

"महाराज रंतिदेव के यहाँ जिन अतिथियों के लिए प्रतिदिन दो हजार गायें काटी जाती हैं, जिनके चमड़े और खून से बुंदेलखंड की चर्मण्वती नदी बह जाती है। उनमें से एक भी विधर्मी नहीं होता, त्याज्य नहीं माना जाता और कालांतर में समाज के ज्यादा प्रबुद्ध हो जाने पर धोखे या जबरदस्ती से गाय की सुखी हड्डी मुँह में चले जाने भर से भाई हमेशा-हमेशा के लिए भाई से अलग हो जाता है। 'उनका' हो जाता है। क्योंकि 'वे' हारे हुए दुश्मन को भाई बनाते रहे और हम हारे हुए भाई को दुश्मन। आज उन भाइयों के पास भी कोई-न-कोई शास्त्री कोई-न-कोई मौलवी पहुँच रहा होगा। वेद-पुराण और कलमा-कुरान का हवाला दे रहा होगा। मुसलमान भाइयों को काफ़िर भाइयों से लड़ने के लिए उकसाया जा रहा होगा। हिंदू भाइयों को घर में घुसी बाबर की नस्लों का सफाया करने की सौगंध दिलाई जा रही होगी। मिलकर होली-दीवाली और ईद-बकरीद मनाने वाले.....भाई एक दूसरे के विरूद्ध खड़े होने के लिए तैयार किए जा रहे होंगे। कब तक नहीं खड़े होंगे।"[1]

शिवमूर्ति जी ने अपनी भाषा-शैली और शिल्प विधान का बेहतरीन परिचय 'त्रिशूल' के आरम्भ में ही साम्प्रदायिकता के दहशत और महमूद की कहानी के रूप में दे दिया है।

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-36

उपन्यासकार ने उपन्यास के आरम्भ के कुछ वाक्यों में ही तत्कालीन साम्प्रदायिकता के स्वरूप को अपनी विशिष्ट भाषा-शैली और शिल्प विधान के माध्यम से चित्रित कर दिया है । किस तरह साम्प्रदायिक माहौल का पूरा वातावरण डर और दहशत की चपेट में आ गया था इसका चित्रण उपन्यास में आए शुरू के कुछ वाक्यों में ही देखने को मिल जाता है। जब महमूद को शास्त्री जी के बेटे के अपहरण के जुर्म में पुलिस ले जा रही होती है और उस हालत में उसे कोई बचाने नहीं आ रहा होता है-

"वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीट कर ले जा रही थी.....चौराहे पर लाठियों से पीट रही थी और मुहल्ले का कोई आदमी बचाने के लिए आगे नहीं आ रहा था।

या....जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर 'त्रिशूल' अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, "बोल साले, जै सिरी राम....."

वहाँ से क्यों नहीं जब बड़ी मस्जिद के परिसर में भीड़ उसे घेरे खड़ी थी और तय नहीं कर पा रही थी आगे क्या करना चाहिए ?

.....जाड़े के कुहरे से अंधी मध्य रात्रि, पेड़ की पत्तियों से टप टप चूता पानी थाने के अंदर से रह कर उठता उसका आर्तनाद और सुनसान सड़क पर ठंड से ठिठुरते असहाय खड़े गीले होते हम..... ।

लेकिन क्या यह केवल महमूद की कहानी है ? "[1]

ऊपर आए उपन्यास के आरम्भ के कुछ ही वाक्यों में उपन्यासकार ने पूरी कहानी का संक्षिप्त सार दे दिया है। जिसमें उन्होंने अपनी सशक्त भाषा शैली और शिल्प विधान के कौशल से उपन्यास का पूरा चित्र उकेर दिया है। 'लेकिन क्या यह केवल महमूद की कहानी है ?" इस प्रश्न के माध्यम से उपन्यासकार ने साम्प्रदायिकता से जुड़े उन तमाम पहलुओं पर विचार किया है तथा

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-01

महमूद के माध्यम से उन सभी अल्पसंख्यकों की कहानी कही है। इस एक प्रश्न का कई प्रश्नों से जुड़ जाना और उन तमाम साम्प्रदायिकत्ता संबंधी पहलुओं पर सोचने के लिए मजबूर कर देना 'त्रिशूल' की भाषा शैली और शिल्प की विशिष्टता ही है।

'त्रिशूल' की भाषा का एक और विशेष गुण यह है कि यह अपनी सूचनाओं के द्वारा उपन्यास की आधी परिस्थितियों का ज्ञान करवा देती है। प्रत्यक्ष रूप से हुए साम्प्रदायिक दंगों की घटनाएँ उपन्यास में कम होने पर भी यह 'त्रिशूल' की भाषा-शैली और शिल्प विधान की ताकत ही है, जो सूचनाओं से घटनाओं की स्थानापूर्ति करती है। अयोध्या में चल रही रामजन्मभूमि आंदोलन के प्रतिक्रिया स्वरूप उपजे नतीजों को भी इन सूचनाओं के माध्यम से जाना जाता है। जिसे इस प्रकार देख सकते हैं-

"अयोध्या में घटी घटना की प्रतिक्रिया में बांग्लादेश और पाकिस्तान में मंदिरों को तोड़े जाने, हिंदुओं की दुकानें और घर लूटने, जलाने, बच्चों को आग में फेंकने, औरतों से बलात्कार करने की खबर आ रही हैं। उससे आशंका, अविश्वास और दहशत का माहौल गाढ़ा हो रहा है। लंबी दूरी की यात्राएँ स्थगित हो रही हैं। हिंदू जनमानस में मुसलमानों की तस्वीर जानी दुश्मन के रूप में उभारी जा रही है। कार्यालयों में कार्यरत मुसलमान कर्मचारियों की उपस्थिति घट गई है। जो आ रहे हैं वे भी बहुत सिकुड़े-सिमटे। वे अयोध्या मसले पर कुछ भी बोलने से परहेज कर रहे हैं। जो कुछ भी कहिए प्रतिक्रियाहीन से सुन लेते हैं।"[1]

सूचनाओं के सहज और सरल भाषा के माध्यम से भी साम्प्रदायिकता के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। इस बात को साबित करने के लिए उपन्यास में आई अनेक सूचनाओं में से यह सूचना ही काफी है।

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-25

मनुष्य के जीवन में गीतों का अपना महत्व रहा है। गीत भी अभिव्यक्ति के अन्यतम माध्यम रहे हैं। 'त्रिशूल' की भाषा की एक विशिष्टता यह भी है कि इसमें लोक भाषा में गीत शैली का प्रयोग हुआ है। इन गीतों की खूबी इस बात में है कि यह कम शब्दों में अधिक बात कह जाते हैं। उपन्यास में भी कई जगह लोकभाषा में गीतों को गाया गया है। पाले जनभाषा में लोकगीत गाकर जनजागरण लाने का प्रयास करता है। उसके भाषणों में जितनी गम्भीरता और प्रभाव देखने को मिलता है उससे कहीं ज्यादा जनसाधारण उसके गीतों से प्रभावित होते हैं। उपन्यास में आए एक प्रसंग में जब पाले एक सभा को संबोधित करने के दौरान धर्म की बात करता है तब वह अपनी बात को इस गीत के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करता है-

"धमक धमक धमक

धमक धमक धमक

झैंयक झैंयक.....

अरे, धोबी भइया मितवा हमार मन धोइ दे

धोबी, भइया मितवा.....

अरे, धरम के लदनी, पाखंड का गदहा

साईं के दुअरवा विमल एक पोखरा

मोर मन कहै मोका ओही मा चभोइ दे

धोबी भइया मितवा हमार मन धोई दे....."[1]

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-54

इस गीत के माध्यम से वह धर्म का वास्तविक अर्थ समझाते हुए उकसाए गए अयोध्या जाने वालों को रोकने की बात करता है। साथ में वह यह भी कहता है कि "सुबह शाम आरती कीर्तन करना और घड़ी घंटा बजाना किसका धरम है ? पुजारी का। अगर पुजारी जी कहें कि घर का काम छोड़कर हमारे साथ चलिए महीने भर अयोध्या में घंटा बजाने तो यह धरम होगा कि अधरम ? महीने भर वहाँ घंटा बजाओगे तो यहाँ बाल बच्चे क्या खाएँगे। बाबाजी का घंटा ?"[1]

उपन्यास के अंतर्गत पाले एक भविष्योन्मुखी पात्र के रूप में हमारे सामने आता है। उसके इसी गुण के कारण वह रामवादी पार्टी के लोगों की नजर में खटकता है। जिसके कारण उसकी हत्या करवा दी जाती है। इसके प्रतिरोध में उपन्यास के अंत में भी गीतों के माध्यम से प्रतिरोध किया जाता है। यथा-

"हमनी को करिहैं हलाल

हाय राम, मंदिर के पुजरिया"[2]

....

"मंदिर के पुजारिया हो

मस्जिद के पूजरिया

नून भात करिहैं मोहाल

हाय राम, मंदिर के पुजरिया"[3]

'त्रिशूल' की भाषा की एक विशिष्टता यह भी है कि यह साधारण कथ्यों के साथ-साथ गीतों में भी अपनी उसी प्रभावात्मकता के साथ आती है। उसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रयुक्त भोजपुरी भाषा

[1] त्रिशूल, शिवमूर्ति, पृष्ठ संख्या-54

[2] वही, पृष्ठ संख्या-८३

[3] वही, पृष्ठ संख्या-83

के गीत हैं। इन गीतों की भाषा अलग होने पर भी ग्रहणीय है। कई उपन्यासों में अपनी बात कहने की एक शैली छोटी-छोटी पंक्तियों या गीतों को बनाया जाता है। 'त्रिशूल' की तरह ही 'तमस' उपन्यास में भी हम इस प्रकार की छोटी छोटी पंक्तियों और गीतों को देख सकते हैं-

"वतन का फिक्र कर ज्यादा मुसीबत आने वाली है।

तेरी बरबादियों के तजकरे हैं आसमानों में।"[1]

गीतों की तरह उपन्यास में कई जगह कहावतों का प्रयोग भी वहाँ की लोकभाषा में हुआ है। इन कहावतों के प्रयोग से 'त्रिशूल' की भाषा में एक तीखापन आ गया है। कहावतों के लिए कहा गया है- 'गागर में सागर भरने की बात' 'त्रिशूल' में प्रयुक्त कहावतों के संदर्भ में एकदम सही जान पड़ता है। उपन्यासकार ने इन कहावतों में भी व्यंग्यात्मक शैली अपनाई है। उपन्यास में प्रयुक्त एक कहावत को हम इस प्रकार देख सकते हैं-

"कूकुर पानी पिये सूड़क के

तबौ न मानै बात तुरुक के।"[2]

साम्प्रदायिक भावना में डूबे हिंदुओं का मुसलमानों के प्रति अविश्वास का इतना कट्टर भाव उपर्युक्त पंक्ति से पता चलता है। पंक्तियों के भाव कुछ इस प्रकार है "कुत्ता जीभ से लपर-लपर पानी पीता है न। वह आदमी की तरह सुड़ककर पीने लगे। ऐसा असंभव संभव हो जाए, तब भी तुरुक की बात का विश्वास न कीजिए।"[3]

हिंदुओं की मुसलमानों के प्रति ऐसी धारणा ही दोनों सम्प्रदायों की दूरी को और अधिक बढ़ाती है। आगे उपन्यास के एक पात्र शास्त्री जी कहते हैं-

---

[1] भीष्म साहनी, तमस,पृष्ठ संख्या-100

[2] शिवमूर्ति, त्रिशूल,पृष्ठ संख्या-32

[3] वही, पृष्ठ संख्या-32

"तिलगुड़ भोजन तुरुक मिठाई

पहिले मीठ, पीछे करूआई,

अर्थात् जो मीठा-मीठा लग रहा है अभी पीछे पता देगा"[1]

यह सारी बातें उपन्यास में महमूद के लिए कही गई हैं। यह सभी उक्तियाँ शास्त्री और उनके जैसे कट्टर हिंदुत्ववादियों की मानसिक जकड़न का परिचय देती हैं। इन सबके पीछे एक ही कारण था महमूद का मुसलमान होना। महमूद जो कि स्वभाव से सहज और सरल है उसके खिलाफ पूरे मुहल्ले वाले इस प्रकार की बातें करते हैं, और अंततः उसे वहाँ से भगा कर ही दम लेते हैं। ऐसी घटनाएँ ही हिंदू और मुस्लिम साम्प्रदायिकता को और अधिक गहराती है। इन पंक्तियों के साथ उपन्यास में आए एक और पंक्ति को इस प्रकार देखा जा सकता है-

"गुलाब गंध से गंधाता है जिला मेरा

शुरू होता है भंडा फोड सिलसिला मेरा"[2]

उपर्युक्त कहावतों में केवल हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वर्णन और दोनों सम्प्रदायों के बीच के दुराव का वर्णन मात्र ही नहीं है। बल्कि इन पंक्तियों की भाषा में ऐसा व्यंग्य है जो हिन्दू मुस्लिम दोनों की मानसिकता पर किया गया है। यह 'त्रिशूल' की भाषा की विशिष्टता ही है कि कई बातें खुलकर न कही जाने पर भी उपयुक्त शब्द चुनाव और भाषा-शैली के कारण पूरी बातें खुलकर पाठकों के सामने आ जाती हैं। इसके साथ ही 'त्रिशूल' में भाषा का स्वरूप साम्प्रदायिकता के खिलाफ कैसा है यह स्पष्टतः पता चल जाता है।

शिवमूर्ति की भाषा को कभी 'प्रेमचंद' की भाषा तो कभी 'रेणु' की भाषा से जोड़ कर देखा गया है। 'त्रिशूल' की भाषा 'भाषा की लोक परम्परा' को समेटे हुए है। इस परम्परा का विकास

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-34

[2] वही, पृष्ठ संख्या-48

और भाषा की पठनीयता ही शिवमूर्ति जी को एक बड़ा कथाकार बनाती है। कथात्मक संरचना के लिए जिन पात्रों, घटनाओं, स्थितियों का सृजन किया गया है वह स्वाभाविक और रोचक ढंग से कथा को आगे बढ़ाते रहे हैं। चूँकि उपन्यास का समय नब्बे के दशक का समय है। नब्बे के दशक के आरम्भ से अंतिम के कुछ वर्षों में कई बड़ी घटनाओं को देखा जा सकता है। तत्कालीन मंडल कमीशन की नीतियों को लागू करने पर उसके प्रतिक्रिया स्वरूप जो कुछ घटित हुआ वही उपन्यास का वर्ण्य विषय रहा है। उपन्यास में शास्त्री जी हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके विपरीत कथा नायक तार्किकता के साथ सोचते समझते हैं। एक प्रसंग में जब शास्त्री जी मंडल-कमंडल की राजनीति के प्रतिक्रिया स्वरूप देश की पचासी प्रतिशत जनता को एक झंड़े के नीचे आने की बात करते हैं तब नैरेटर इस बात का विरोध करते हुए आरक्षण समर्थक और आरक्षण विरोधियों का खुलासा करता है।

आगे वह शास्त्री जी की ओर संकेत करते हैं और 'आरक्षण विरोधियों' से सावधान करते हुए एक चूहा और साँप के रूपक के मध्यम से उनकी असलियत को प्रस्तुत करते हैं। वह कहतें हैं कि- "एक साँप था और एक चूहा था। दोनों एक काठ के बक्से में बंद हो गए थे। चूहे ने साँप को देखा और साँप ने चूहा देखा। चूहा ड़र गया। आंख बंद करके इंतजार करने लगा कि साँप उसे निगलने के लिए कब झपटता है। लेकिन साँप उससे 'धरम' की बातें करने लगा। 'परलोक' की बातें करने लगा। भगवान की बातें करने लगा। बीच-बीच में बराबरी और भाईचारे की बातें करने लगा। बोला, जमाना मेल-जोल और सहयोग से रहने का आ गया है। मैं तुम्हें खाऊँगा नहीं। हम दोनों मिलकर इस लकड़ी के बक्से में छेद करेंगे। तुम छेद करोगे और मैं पूँछ डालकर नापता रहूँगा कि निकलने-भर की जगह हो गई या नहीं.....। यही किया गया। जब साँप ने मापकर देख लिया कि निकलने भर की जगह हो गई है तो चूहे को खाकर निकल गया। .....तो क्या समझे ? वे हम पचासी प्रतिशत पिछड़ों के लिए साँप हैं। क्या अब भी आप साँप से दोस्ती जारी रखेंगे?"[1]

[1] शिवमूर्ति, त्रिशूल, पृष्ठ संख्या-20

इस प्रकार उपन्यासकार ने 'त्रिशूल' की भाषा में व्यंजकता लाने के लिए इस साँप और चूहे के रूपक को गढ़ा है। 'त्रिशूल' की भाषा की यही विशिष्टता है कि प्रमुख कथा की लीक से हटकर भी वह पूरी परिस्थिति का सहज ज्ञान करवा देता है। किस प्रकार मंडल कमंडल की राजनीति से आम जनता का हाल बेहाल हो रहा था या आगे और होने वाला था, इसका सफल चित्रण इस 'साँप चूहे' के एक छोटे से रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में आगे हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वीभत्स रूप देखने को मिलता है। उसकी पृष्ठभूमि यहीं से बनती है। जिसका सफल चित्रण 'त्रिशूल' के आरम्भ में ही हो जाता है। यह केवल 'त्रिशूल' की सरल भाषा के माध्यम से ही सफल हो पाता है।

'त्रिशूल' की पूरी कहानी पूर्वी उत्तरप्रदेश के एक अंचल विशेष पर लिखी हुई है। इसी कारण उस अंचल की भोजपुरी भाषा में प्रयुक्त कई शब्द इसमें आ गए हैं। यही शब्द भाषाई आकर्षण की तीव्रता को बढ़ाते हैं। अहिंदी भाषियों के लिए यह नया होने पर भी वह वाक्य संरचना की दृष्टि से और उपन्यासकार की सधी भाषा-शैली और शिल्प विधान के कारण आसानी से समझ में आ जाता है। गाँव में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द उपन्यास में इस प्रकार है- 'परनाम' (प्रणाम), 'भरिष्ठ' (भ्रष्ठ), 'मुसल्ला' (मुसलमान), 'एका (एकता), 'दातून कुचतें' (दातून करना), 'पसीना चुहचूहा' (पसीना बहना), 'सत्र' (सत्य), 'छत्री' (क्षत्रिय), 'तब्बै न मारके, 'लतियाना' (लात मारना), 'मेहरारू' (पत्नी), 'जै सिरी राम' (जय श्री राम), 'पैलागी' (पैर छूना), 'गुजरिया' (नाचनेवाली), 'हुमच' (कसकर), 'मुखमंतिरि' (मुख्यमंत्री), 'बकुर' (उगलना), 'नरमाता' (ठण्डा पड़ना), 'करिहें' (करना), 'बेटवा' (बेटा), 'महुआरी' (महुए का बाग), 'ठीहा' (ठीकाना), आदि शब्दों को देखा जा सकता है।

इसी प्रकार अंग्रेजी के कई शब्दों का प्रयोग उपन्यास में इस प्रकार हुआ है जिसमें – 'ट्रक', 'इंचार्ज', 'एडजस्ट', 'पोस्टमार्टम', 'अफेंस', 'सैक्यूलर', 'टेंसन्', 'हाफ', 'वैरिकेटिंग',

'इंटरव्यू', 'मर्डर', 'डयूटी', 'मीटिंग', 'क्राईम', 'एफिडेविट', 'ब्रेक', 'डिकलेयर', 'स्पीड', 'ब्रांड', 'बाइडिंग', 'रिपोर्ट' आदि को देख सकते हैं।

'त्रिशूल' की भाषा में प्रयुक्त स्थानीय शब्दों, स्थानीय भाषा और अंग्रेजी के शब्दों के आने पर भी इसकी भाषा कहीं बोझिल प्रतीत नहीं होती है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से शिवमूर्ति की अन्य रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी कहानियों तथा अन्य उपन्यासों में भी सहज सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। लेकिन इनकी कहानियों तथा अन्य उपन्यासों की भाषा से 'त्रिशूल' एकदम अलग जान पड़ता है। कारण शिवमूर्ति जी पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग तथा वातावरण और समाज संदर्भित अनुकूल भाषा के सटीक प्रयोक्ता हैं। ऐसा नहीं है कि इनकी कहानी तथा उपन्यासों की भांति 'त्रिशूल' में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। परन्तु 'त्रिशूल' के भाषाई तेवर से इनकी अन्य रचनाओं में प्रयुक्त भाषा-शैली की तुलना करें तो यह एक तरह से सबसे अलग जान पड़ती है। विषयानुसार भाषा-शैली और शिल्प के प्रयोग को शिवमूर्ति की एक बड़ी विशेषता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

'त्रिशूल' की मूल समस्या साम्प्रदायिकता और जातिवाद की है तो इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में 'त्रिशूल' की भाषा का 'क्या स्वरूप रहा' इसका विश्लेषण किया जाए तो इन समस्याओं से संबंधित अन्य उपन्यासों को सामने रखकर देखना जरूरी हो जाता है। जब हम इन समस्याओं से संबंधित अन्य उपन्यासों को इसके सम्मुख रखकर देखते हैं तब हमें यह ध्यान रखना जरूरी होता है कि इन उपन्यासों की पृष्ठभूमि क्या रही है ? उपन्यास की पृष्ठभूमि के अनुसार उपन्यास के भाषाई तेवर या उतार-चढ़ाव में अंतर आता चला जाता है। इस दृष्टि से अगर 'त्रिशूल' की भाषा को देखें तो साम्प्रदायिकता के खिलाफ इसमें भाषाई तेवर तो बदलता है पर इससे पहले के उपन्यासों की अपेक्षा वह भाषाई आक्रामकता नहीं है। 'त्रिशूल' की भाषा की विशिष्टता को ध्यान पूर्वक देखें तो इसमें व्यंजकता भी है और व्यंग्य भी है जो उपन्यास की मूल समस्या साम्प्रदायिकता और जातिवाद दोनों पर तीखा प्रहार करती है।

उपसंहार

भारत के साथ विश्व के अन्य देशों में जहाँ बहुधर्मी एक साथ बसते हैं, उनके तत्कालीन सामजिक और राजनीतिक परिदृश्य पर ध्यान दें तो उनमें साम्प्रदायिकता की समस्या को मुख्य रूप से चिन्हित किया जा सकता है। भारत के लिए साम्प्रदायिकता अत्यंत पुरानी है। धीरे-धीरे इसका स्वरूप और भी अधिक जटिल होता चला जा रहा है। भारत की मौजूदा विकट समस्या 'साम्प्रदायिकता' की जड़ हमें प्राचीनकाल से चली आ रही इतिहास में व्याप्त जाति व्यवस्था में देखने को मिलती है। भारत में वर्षों पुरानी जाति व्यवस्था के अंतर्गत चली आ रही ऊँच-नीच तथा धार्मिक भावना का प्रखर रूप ही आज की विकट समस्या 'साम्प्रदायिकता' की जन्मदायी है।

धर्म का भ्रामक इतिहास के साथ घाल-मेल ही साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। अर्थात् धर्म की व्याख्या जब भ्रामक इतिहास के आधार पर की जाती है तभी साम्प्रदायिकता अपना सिर उठाती नजर आती है। जिसे 'त्रिशूल' के सन्दर्भ में भलीभांति समझा जा सकता है। 'त्रिशूल' में होने वाले साम्प्रदायिक दंगों की शुरुआत शास्त्री जी तथा समाज में फैले शास्त्री जी की मानसिकता रखने वाले लोगों द्वार ही होती है। मध्यकाल में मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दुओं के मंदिर तोड़े जाने की बात हिन्दुओं की धार्मिक भावना पर चोट तो करती है जिसको आधार बना कर हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ भड़काया जाता रहा है। इसके पूरे जिम्मेदार इतिहास को गलत तरीके से प्रस्तुत करने वाले ही हैं। आशय यह है कि मध्यकाल में मुसलमान शासक भारत में हिन्दू धर्म को नष्ट नहीं बल्कि धन लूटने आए थे। कारण यह था कि उस समय धन को मंदिर और गढ़ों के नीचे दबा कर रखा जाता था। इस तरह अधूरे सच को हमेशा दबा कर रखा गया और हिन्दुओं में साम्प्रदायिक उन्माद भरने की कोशिश कुछ स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ साधने के लिए करते रहे।

संस्कृति और धर्म का प्रयोग जब-जब सत्ता प्राप्त करने के लिए किया जाएगा तब-तब लोगों को साम्प्रदायिकता जैसी विकट समस्या का सामना करना पड़ेगा। इसे आधुनिक भारत के सन्दर्भ में देखें तो यह स्वतः खुल कर सामने आता है। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजों ने भी अपनी सत्ता और साम्राज्य बचाए रखने के लिए जिस प्रकार धर्म और संस्कृति के नाम पर भारत के लोगों को आपस में लड़ाया। उसी प्रकार मंडल कमीशन के लागू होने पर समाज का दो फांकों में बंटने पर सवर्ण हिन्दू पुनः केंद्र में आने के लिए जिस रामजन्मभूमि विवाद को खड़ा करते हैं, उसे देखा जा सकता है । 'त्रिशूल' हो या अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यास हो, उनमें अभिव्यक्त साम्प्रदायिकता की समस्या के तात्कालिक कारण चाहे जितने निकाल लिए जायें पर उनकी पृष्ठभूमि हमेशा पहले से तैयार कर दी गई होती है। अर्थात् त्रिशूल में जिन साम्प्रदायिक मनोभाव से उपजे साम्प्रदायिक दंगे देखने को मिलते हैं उसकी पृष्ठभूमि मंडल कमीशन के लागू होने के साथ-साथ ही तैयार की जा रही थी।

त्रिशूल' के साथ-साथ अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यासों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि साम्प्रदायिकता की समस्या की उत्पत्ति धार्मिकता के कारण नहीं होती बल्कि राजनीतिक वर्चस्व के लिए संघर्ष का परिणाम होती है। इसी संबंध में असगर अली इंजीनियर का मानना है कि धर्म में भावना का पुट होता है और इसमें लोगों को एकत्रित करने की क्षमता होती है। इसी का फायदा उठाकर कुछ साम्प्रदायिक मनोभाव वाले लोग साम्प्रदायिकता फैलाने के लिए औज़ार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

'त्रिशूल' में व्यक्त साम्प्रदायिकता के स्वरूप और समस्या के कारणों की जाँच करने पर साम्प्रदायिकता को बढ़ाने वाले कारकों में मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रति पूर्वाग्रह, झूठी अफवाहें, और भ्रामक इतिहास आदि को रेखांकित किया जा सकता है। यही सारे कारक साम्प्रदायिकता को फैलाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साम्प्रदायिकता को फैलाने में भाषा के प्रयोग की भूमिका को उपन्यास के संदर्भ में भलीभांति देखा जा सकता है । किस प्रकार लोगों में

साम्प्रदायिक मनोभाव भरने के लिए भाषा का प्रयोग किया जाता है। उत्तेजक भाषण, धार्मिक गीतों, कौमी जिन्दाबाद-मुर्दाबाद जैसे नारेबाजियों में तथा जनसंचार माध्यमों आदि में किस प्रकार साम्प्रदायिकता फैलाने वाली भाषा का एक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसे त्रिशूल में अच्छी तरह से देखा जा सकता है।

साम्प्रदायिकता और जातिवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जिसे शिवमूर्ति जी ने 'त्रिशूल' के माध्यम से व्यक्त किया है इसके साथ ही औपन्यासिक कृति की दृष्टि से इस कृति की कुछ सीमाएं भी हैं। अर्थात् इसमें जहाँ साम्प्रदायिकता की समस्या का चित्रण महमूद को केंद्र में रख कर किया गया है वहीं जातिवाद के विरोध के लिए पाले को खड़ा किया गया है। किन्तु उपन्यास में कहीं भी इन दोनों पात्रों का किसी घटना के स्तर पर जुड़ाव नहीं देखा गया है। इस कमी के बावजूद भी इस उपन्यास में साम्प्रदायिकता के स्वरूप और उसकी समस्या को व्यापक फ़लक पर देखा और समझा जा सकता है। इस प्रकार शिवमूर्ति जी का वर्तमान समय की वास्तविकताओं को पृष्ठभूमि बनाकर रचे गए उपन्यास 'त्रिशूल' हमारे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसके माध्यम से धर्म में राजनीति का प्रयोग, संस्कृति तथा इतिहास की गलत व्याख्या, साम्प्रदायिक सौहार्द्र और प्रेम के मूल्यों का ह्रास और आपसी अविश्वास के कारण उत्पन्न हुए साम्प्रदायिकता की समस्या को भलीभांति समझा जा सकता है। साम्प्रदायिक सौहार्द्र में इन कमियों के कारण हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय के बीच की खाई आज बढ़ती ही जा रही है जिसे पाटने के लिए आज साम्प्रदायिक सौहार्द्र और आपसी विश्वास की बेहद जरूरत है। जिस प्रकार साम्प्रदायिकता की समस्या एक दिन की बुनावट नहीं है ठीक उसी प्रकार इसका समाधान भी एक दिन में नहीं हो सकता। इससे लड़ने के लिए राजनीतिक, धार्मिक और वैचारिक स्तर पर एक साथ काम करना होगा। अंततः शिवमूर्ति उन सभी साम्प्रदायिक कारणों के लिए चिंतित जान पड़ते हैं जो मानवता विरोधी है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

I. आधार-ग्रंथ

क्र.सं.	पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	संस्करण
1.	त्रिशूल	शिवमूर्ति	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 1995

II. सहायक-ग्रंथ सूची

क्र.सं.	पुस्तक	लेखक/संपादक	प्रकाशक	संस्करण
1.	आख़िरी कलाम	दूधनाथ सिंह	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	सं 2007
2.	आधुनिक हिंदीउपन्यास	सम्पादक- नामवरसिंह	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2010
3.	उपन्यास एक अंतर्यात्रा	डॉ. जानकी प्रसाद शर्मा	साईं पब्लिकेशन, गाजियाबाद	सं. 2012
4.	उपन्यासों के सरोकार	डॉ.ई. विजय लक्ष्मी	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली	सं. 2012
5.	कर्मभूमि	प्रेमचंद	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम सं. 1981
6.	कांटे की बात	सं. राजेंद्र यादव	दिवि इंटरनेशनल,7/15971 ,कबूल नगर,शहादरा,दिल्ली	सं. 1998
7.	कितने पाकिस्तान	कमलेश्वर	राजपाल एंड संस, नई दिल्ली	सं. 2010
8.	केसर कस्तूरी	शिवमूर्ति	राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2007
9.	झूठा सच	यशपाल	लोकभारती प्रकाशन,महात्मा गाँधी	चतुर्थ संस्करण

			मार्ग,इलाहाबाद	1977
10.	तर्पण	शिवमूर्ति	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2004
11.	तमस	भीष्म साहनी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 1984
12.	धर्म और साम्प्रदायिकता	नरेन्द्र मोहन	प्रभात प्रकाशन	प्रथम सं. 1996
13.	प्रेमाश्रम	प्रेमचंद	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 1974
14.	भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव	असगर अली इंजीनियर अनुवाद-सुभाष चन्द्र	साहित्य उपक्रम, शाहदरा, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2003
15.	रामजन्मभूमि बनाम बाबरी मस्जिद	सौ इकबाल अहमद जौनपुरी	चिराग-ए-हिन्द प्रकाशन, जाफराबाद जौनपुर	तृतीय सं. 2003
16.	लज्जा	तसलीमा नसरीन अनुवादक: मुनमुन सरकार	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	सं. 1994
17.	सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस	विभूति नारायण राय	राधाकृष्ण प्राईवेट लिमिटेड,२/३८,अंसारी मार्ग,दरियागंज,नई दिल्ली	प्रथम सं. 2000
18.	साम्प्रदायिकता : अतीत और वर्तमान	अरुण कुमार	प्रकाशन संस्थान,4715/21, दयानंद मार्ग, दरियागंज,नई दिल्ली	प्रथम सं. 1996
19.	साम्प्रदायिकता एक ग्राफिक अकाउंट	राम पुनियानी एवं शरद शर्मा	वर्ल्ड कॉमिक्स इंडिया एवं वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2011
20.	साम्प्रदायिकता एक	यशवंत विष्ट	महामयी प्रकाशन	सं 1998

	चुनौती और चेतना			
21.	साम्प्रदायिकता एक प्रवेशिका	डॉ. विपिन चन्द्रा	नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2008
22.	सेवासदन	प्रेमचंद	सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद	प्रथम सं. 1978
23.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह 'दिनकर'	लोकभारती प्रकाशन,महात्मा गाँधी मार्ग,इलाहाबाद	सं. 2005
24.	हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली	डॉ. अमरनाथ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	पहला छात्र संस्करण 2012
25.	हिंदी उपन्यास का इतिहास	गोपाल राय	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम सं. 2005

111. पत्र-पत्रिकाएँ

1. बहुवचन, अशोक मिश्र (सं.), जनवरी-मार्च,अंक-32,2012,वर्धा
2. बहुवचन, अशोक मिश्र (सं.), अंक-36, जनवरी-मार्च, 2013,वर्धा
3. मंच, मयंक खरे(सं.), शिवमूर्ति विशेषांक, जनवरी-मार्च, २०१०, नई दिल्ली
4. लमही, ऋत्विक राय (सं.), शिवमूर्ति विशेषांक, अक्टूबर-दिसम्बर, २०१२, लखनऊ
5. संवेद, किसन कालजयी (सं.), जनवरी, उपन्यास विशेषांक,2013, दिल्ली
6. संवेद, किसन कालजयी (सं.), जनवरी-मार्च, 2013, नई दिल्ली
7. संवेद73-75, किसन कालजयी (सं.),वर्ष-6, अंक2-4, फरवरी-अप्रैल,2014, नई दिल्ली
8. सम्मलेन, विभूति मिश्र (सं.), भाग-18,संख्या-1,हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग
9. हंस, राजेन्द्र यादव (सं.), जनवरी-अप्रैल, 2003, नई दिल्ली

IV.वेब सामग्री

1.WWW.DIR.HINKHOJ.COM

2.WWW.HINDISAMAY.COM

3.WWW.SHIVMURTIBLOGPOT.COM

परिशिष्ट

कथाकार शिवमूर्ति का साक्षात्कार

१. आपने लिखना कब प्रारम्भ किया ? लेखन क्षेत्र में आने के पीछे वह कौन से कारण हैं जिसने आपको इस क्षेत्र में आने के लिए प्रेरित किया ?

उ०- मेरी पहली कहानी 'पनफूल' के नाम से 'वातायन' पत्रिका में सन् 1968 में प्रकाशित हुई थी। इस आधार पर लिखने की शुरुआत सन् 1968 से मान सकते हैं। लेखन के क्षेत्र में आने के पीछे किसी कारण की तलाश करना उपयुक्त नहीं होगा। प्रकृति प्रदत्त रुझान ही इसके पीछे कारक तत्व हो सकता है। मूर्त कारण किस्से कहानियों के प्रति अवचेतन मन का झुकाव भी हो सकता है।

२. 'त्रिशूल' के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का मानना है कि यह लम्बी कहानी है और कुछ विद्वानों का मानना है कि यह लघु उपन्यास है। कारण यह उपन्यास महज़ 104 पृष्ठों का ही है। इस बारे में आपकी क्या राय है?

उ०- कोई रचना उपन्यास है या कहानी, इसका निर्धारण रचना की विषय वस्तु के आधार पर किया जाना उपयुक्त होगा। 'त्रिशूल' में चूँकि समाज के बहुआयामी फ़लक को कथानक में समेटने का प्रयास किया गया है। इसलिए इसे उपन्यास कहा गया है।

३. हर रचनाकार किसी न किसी बीज तत्त्वों, घटनाओं या किन्ही कारणों से प्रभावित या प्रेरित होकर ही किसी रचना के निर्माण में प्रवृत्त होता है, तो 'त्रिशूल' लिखने के पीछे वे कौन सी घटना या कारण रहे हैं ?

उ०- जब यह उपन्यास लिखा गया उस समय उत्तर भारत में बाबरी मस्जिद राम जन्मभूमि विवाद चरम पर था। इसके कारण या इस मुद्दे को आधार बना कर समाज के दोनों धर्मावलंबियों (हिन्दू-मुसलामन) के बीच खाई, वैमनस्य पैदा करने का प्रयास किया जा रहा

था । उसी समय केंद्र की सरकार ने अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण हेतु मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू किया था । जिसके चलते हिन्दू समाज अगड़े व पिछड़े खेमें में बंट गया था । इन दोनों परिघटनाओं के कारण समाज में जो विघटन हो रहा था उसे चित्रित करने के उद्देश्य से 'त्रिशूल' लिखा गया ।

४. 'त्रिशूल' अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यासों से किस प्रकार अलग है ?

उ०- 'त्रिशूल' अन्य साम्प्रदायिकता संबंधी उपन्यासों से किस प्रकार अलग है इसे तो पाठक या समीक्षक ही स्पष्ट करे तो उचित होगा ।

५. 'त्रिशूल' के सन्दर्भ में उस समय के महमूद (अल्पसंख्यक) और आज के महमूद (अल्पसंख्यक) में क्या कोई अंतर आया है ?

उ०- महमूद के सन्दर्भ में वर्ग की स्थिति आज भी लगभग वही है जो उस समय थी ।

६. 'त्रिशूल' की प्रासंगिकता पर वैसे तो कोई दो राय नहीं है और यह आज भी विद्यमान है । लगभग 20 साल बाद आप उसे किस रूप में देखते हैं ?

उ०- हिन्दू और मुसलमान समाज के बीच जो खाई बाबरी मस्जिद विध्वसं के चलते पैदा हुई वह बीस साल में घटी हो ऐसा नहीं लगता क्योंकि आगे भी गोधरा काण्ड जैसी घटनाएं और गुजरात में भयानक दंगे हुए । जिससे दोनों सम्प्रदायों के बीच का अविश्वास बढ़ा ही है, घटा नहीं है ।

७. 'त्रिशूल' में आपकी उपस्थिति कितनी प्रतिशत है ?

उ०-लेखक के रूप में मेरी उपस्थिति वही है जैसे अन्य रचनाओं में लेखक की उपस्थिति रहती है ।

८. 'त्रिशूल' उपन्यास मूलतः साम्प्रदायिकता और जातिवाद की समस्या पर आधारित है । जहाँ एक ओर साम्प्रदायिकता के दंश से 'महमूद' पीड़ित है, वहीं जातिवाद के

विरुद्ध 'पाले' खड़ा होता है। लेकिन ऐसा क्यों है कि इन दोनों पात्रों का उपन्यास में कहीं जुड़ाव नज़र नहीं आता है ?

उ०- दोनों का जुड़ाव हो ही नहीं सकता। महमूद का कार्य क्षेत्र शहर का एक खास मोहल्ला है। पाले का कार्य क्षेत्र वहाँ का ग्रामीण परिवेश है। दोनों मात्र इस कारण उपन्यास की कथा में साथ आते हैं क्योंकि पाले की हत्या के बाद उसकी लाश प्रदर्शन के लिए जिलाधिकारी के आवास पर लायी जाती है जहाँ उपन्यास का नैरेटर महमूद की तलाश में भटक रहा है। अन्यथा हम दोनों को कथानक में ढालने के लिए इस उपन्यास का कलेवर ढाई तीन सौ पृष्ठों तक बढ़ाना पड़ता। इस दृष्टि से यह सौ पृष्ठों के कलेवर में समा गया है।

९. 'त्रिशूल' में किसी हिन्दू पर अत्याचार या अन्याय का वर्णन नहीं हुआ है (साम्प्रदायिक दंगों के सन्दर्भ में) और इसका केवल शिकार मुस्लिम वर्ग ही होता है चाहे वो महमूद हो या दर्जी हो। इसके पीछे क्या कारण है ?

उ०- चूँकि दंगा हिन्दू आतंकवादियों द्वारा शुरू किया गया है और वे बहुमत में हैं, पहले से तैयार हैं, संगठित हैं, इसलिए उन पर अत्याचार की स्थिति नहीं बनी।

१०. आपकी कहानियों और उपन्यासों में राजनीतिके विद्रूप स्थिति का चित्रण दिखाई देता है। आज की वर्तमान राजनीति को आप किस रूप में देखते हैं ?

उ०- राजनीतिक विद्रूप को स्पष्ट करना लिखने का एक उद्देश्य है। आज की राजनीति को ज्यादा जिम्मेदार ज्यादा ईमानदार ज्यादा स्वार्थहीन होने की जरुरत है।

११.कई विद्वानों ने आपकी भाषा-शैली को प्रेमचंद और 'रेणु' की भाषा शैली की परम्परा का विकास माना है। आप इस बात से कितने सहमत हैं?

उ०- विद्वानों ने ऐसा पाया होगा। प्रेमचंद और रेणु मेरे प्रिय हैं।

१२.**आपकी कहानियों तथा उपन्यासों में अवध अंचल की लोकगीतों का प्रयोग हुआ है । संभवतः यह अहिन्दी भाषी पाठकों के लिए सम्प्रेषण में दिक्कत पैदा करती है । ऐसे में पाठक, पाठ के साथ कैसे 'co-relate' करेंगे ?**

उ०- यह मेरी जिज्ञासा भी है कि अवधी के लोक गीतों का प्रयोग अहिन्दी भाषी के लिए किस स्तर तक दिक्कत पैदा करता है। मैं चाहता हूँ कि वस्तुस्थिति से पाठक अवगत कराएँ ताकि उसी के अनुसार है उस सम्बन्ध में आगे के लिए कोई निर्णय ले सकूँ।

१३.**आपके कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की समस्याएं व्यापक रूप में चित्रित हुई है। वहीं शहरी जीवन की समस्याओं को आपने बहुत कम वर्णित किया है । इसके पीछे क्या कारण हो सकता है ?**

उ०- मेरा परिचय ग्रामीण जीवन से ही है तथा उसी जीवन को चित्रित करने में मेरा मन लगता है। शहरी जीवन पर लिखने वाले बहुत हैं। मैं गाँव के साथ ही खड़ा होना सार्थक मनाता हूँ।

१४.**आपकी अधिकतर कहानियों में स्त्री चरित्र केंद्रीय पात्र रही हैं । क्या इसके भी कोई खास कारण रहे हैं ?**

उ०- पता नहीं अवचेतन मन स्त्रियों को ही मेरी कहानी के मुख्य चरित्र के रूप में क्यों उठता है ? शायद उनका दुःख, उनकी पीड़ा मुझे ऐसा करने के लिए बाध्य करती है।

१५.**आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़कर हमेशा यह लगता है कि आप जटिल समस्याओं को भी आसान भाषा और शिल्प में हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं। ऐसा आप सायास करते हैं या यह अनायास रूप से ही घटित हो जाता है ?**

उ०- जटिल समस्याओं को आसान भाषा में प्रस्तुत करने के लिए सायास कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती। मेरी भाषा ही सरल है। इसीलिए जो कुछ भी कहा जाता है उसी भाषा में कहा जाता है।

१५. 'तर्पण' में राजपतिया के पिता पियारे जब जेल जाने की बात करता है। तो कहीं न कहीं आदर्श की स्थिति दिखाई देती है। तो प्रश्न यह है कि उसके चरित्र पर आदर्शवाद थोपा हुआ जान नहीं पड़ता है ?

उ०- पियारे का जेल जाना के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर देना आदर्श की स्थिति भी है और जरुरत भी है। जेल तो जाना ही होगा उसके बेटे को तो बचाने के लिए वह खुद को प्रस्तुत कर देता है।

१६. **आपकी कुछ कहानियों पर फिल्मों का निर्माण भी हुआ है। मसलन 'तिरिया चरित्तर', 'कसाईबाड़ा' तथा 'भरतनाट्यम' पर बनी फिल्मों से आप कितना संतुष्ट रहे हैं ?**

उ०- तिरिया चरित्तर की तुलना में कसाईबाड़ा ज्यादा प्रभावी है। भरतनाट्यम भी ठीक ठाक कही जाएगी।

१७. इन दिनों आप क्या लिख रहें है ?

उ०- इन दिनों पूर्व 'नया ज्ञानोदय' में जनवरी ०८ में प्रकाशित अपने उपन्यास 'आख़िरी छलांग' में परिवर्तन कर रहा हूँ ताकि उसे पुस्तक के रूप में प्रकाशन हेतु दिया जा सके। ग्रामीण स्त्री की मौन स्वतंत्रता पर एक कहानी पर भी काम चल रहा है।